औदुम्बरी

मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः

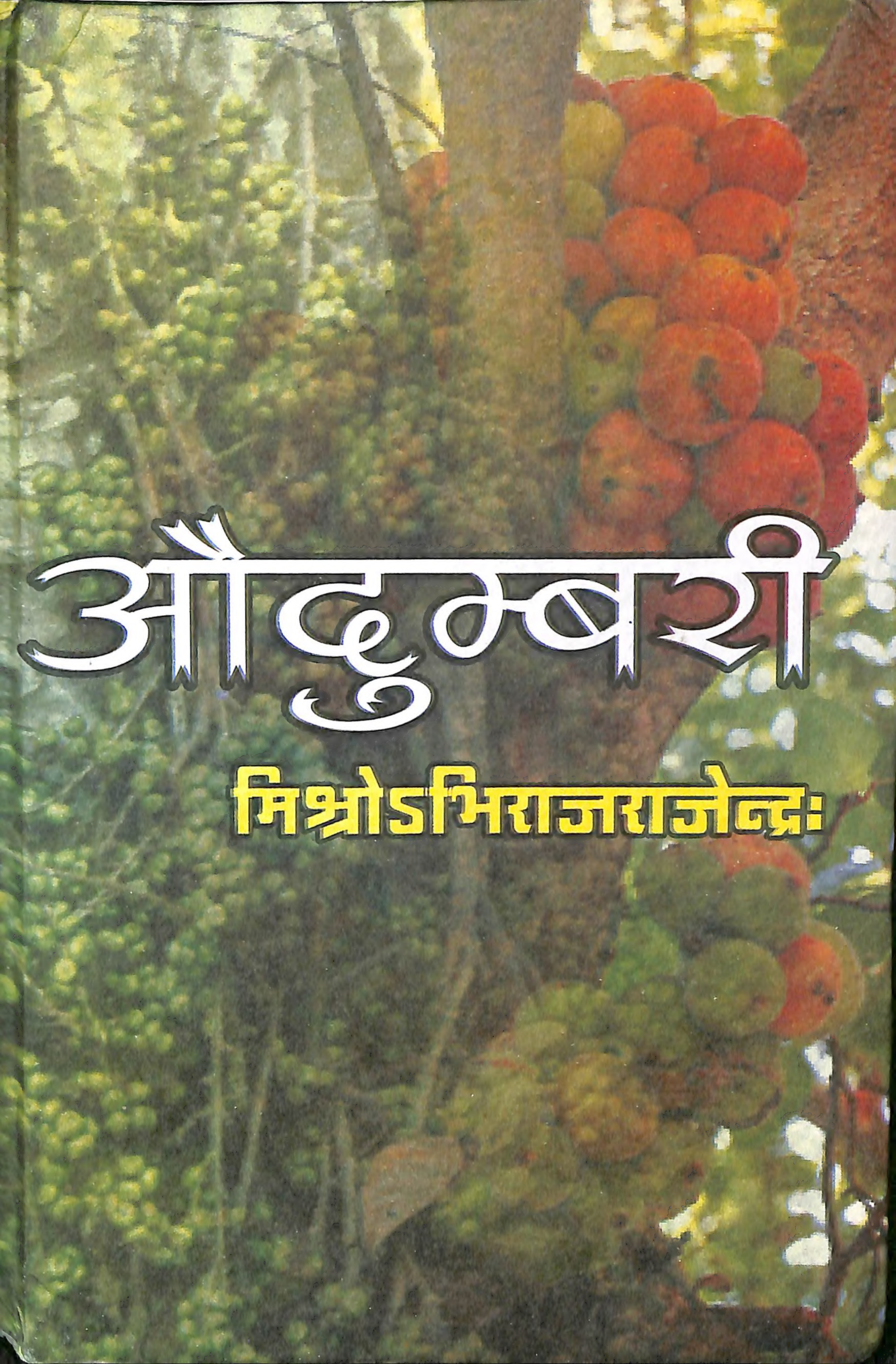

औदुम्बरी

मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः

औदुम्बरी

।। अभिनवगलज्जलिकासङ्कलना ।।

रचनाकारः
महामहोपाध्यायस्त्रिवेणीकविः
मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः
कुलपतिचरः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयीयः
वाराणसी-(उ०प्र०)

वैजयन्त प्रकाशन
इलाहाबाद

औदुम्बरी

।। अभिनवगलज्जलिकासङ्कलना।।

गालज्जलिकः
मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः
पूर्वकुलपतिः
सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयीयः

ISBN 978-93-80632-08-7

प्रथमसंस्करणम् : महाशिवरात्रिः १७ फरवरी 2015 ई०
स्वत्वाधिकारः © : रचनाकारः
ग्रन्थमूल्यम् : पञ्चशतरूप्यकाणि

प्रकाशकः
वैजयन्तप्रकाशनम्
8, बाघम्बरीमार्गः, भरद्वाजपुरम्
(अल्लापुरम्), इलाहाबादम्-(उ०प्र०)

मुद्रकः
दूबे प्रिन्टर्स एण्ड ग्राफिक्स
50 A, बलरामपुर हाउसः
इलाहाबादम्-(उ०प्र०)

AUDUMBARI

(A Fresh Collection of Sanskṛta Gazals)

By
Trivenikavi
Prof. Abhirāja Rajendra Mishra
Ex Vice Chancellor
Sampurnānanda Sanskṛta University
Varanasi-(U.P.)

Vaijayanta Prakashana
Allahabad

Audumbari

A Fresh Collection of Sanskṛta Gazals

The Poet :
Mahāmahopādhyāya
Trivenikavi
Prof. Abhirāja Rajendra Mishra
Ex Vice Chancellor
Sampurnānanda Sanskṛta University
Varanasi-(U.P.) INDIA

ISBN 978-93-80632-08-7

First Edition	**: Mahāshivarātri 17th February 2015**
Copyright ©	**: The Writer**
Price of the Book	**: Rs. Five Hundred Only**

Publisher :
Vaijayanta Prakāshan
8, Baghambari Road, Bharadwajapuram
(Allahpuram) Allahabad- (U.P.)

Printed at :
Dube Printers & Graphics
50 A, Balrampur House
Allahabad- (U.P.)

इयत्तया अनवधारणीया-संस्कृत ग़ज़ल

समकालीन संस्कृत साहित्य विषय-वैविध्य तथा विधा बाहुल्य का मणिकाञ्चन संयोग है। यद्यपि बाज़ारवाद तथा आर्थिक क्रान्ति के इस युग में कविता पर बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा है कि अब कविता कौन-सा प्रयोजन पूरा करती है? आचार्य राजेन्द्र मिश्र भी इस मनोवेदना को प्रकट करते हैं-

ध्रुवं निष्फलं मत्कवित्वं नु जातम्।
ममैवानुजा नेच्छवो मामुपैतुम्।।[१]

हमारी भावी पीढ़ी ही यदि काव्य-परम्परा का अनुसरण नहीं करना चाहती है तो कवित्व अथवा कविता व्यर्थ है। परन्तु इस निराशा पर कवि के स्वाभिमान ने विजय-पताका फहराते हुए कहा-मेरी गीतियाँ किसी प्राकृतकवि का अवसरानुकूल गीत नहीं हैं अपितु ये तो पवित्र मन्त्र के समान प्रभावी गीतियाँ हैं-

अङ्ग गीतिस्त्रिवेणीकवेः श्रूयताम्।
प्राकृतेयं न भोः पूतमन्त्रात्मिका।।[२]

पूतमन्त्रात्मिका ग़ज़लों की सुदीर्घ सर्जना से आचार्य राजेन्द्र जी ने समकालीन संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। कवि संस्कृत की सुदीर्घ काव्यसर्जना-परम्परा में सिद्धहस्त है-कुले **भवभूतिपण्डितराजयोर्जातो-ऽभिराजोऽहम्।**[३]

जिसका भवभूति तथा पण्डितराज जगन्नाथ के कुल में जन्म हुआ हो वह उनकी परम्परा का उत्तरोत्तर नवनवोन्मेष करने का आकांक्षी है। एक ओर तो आचार्य राजेन्द्र मिश्र का काव्य-संसार नवनवोन्मेषपूर्वक नूतन विधाओं के माध्यम से वर्तमान युगबोध को प्रस्तुत करता हुआ संस्कृत भाषा के मृतभाषारूप मृषापवाद को निरस्त करता है तो दूसरी ओर मत्तवारणी, शालभञ्जिका, हविर्धानी, कनीनिका तथा शिखरिणी इन पाँच ग़ज़ल-संग्रहों के पश्चात् **औदुम्बरी** की सर्जना से यह प्रतिपादित करता है कि वर्तमान की विकटता तथा भीषणता को संस्कृत कविता का माधुर्य कैसे छिन्न-भिन्न कर देता है। ग़ज़ल-विधा का संविधानिक (Format) तो अरबी तथा उर्दू से आयातित है, परन्तु संस्कृत की कवि-परम्परा ने विषय-वस्तु की दृष्टि से इस विधा को नूतन आयाम दिये हैं।

संस्कृत-साहित्य में ग़ज़ल के प्रवर्तक के रूप में भट्ट मथुरानाथ शास्त्री का नाम अग्रगण्य है। उनके पश्चात् पण्डित बच्चूलाल अवस्थी, आचार्य जगन्नाथ पाठक, आचार्य राजेन्द्र मिश्र, आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी आदि की कवि-परम्परा ने संस्कृत ग़ज़ल को सुप्रतिष्ठित कर यह सिद्ध कर दिया कि ग़ज़ल-विधा पर मात्र

किसी भाषा-विशेष का एकाधिकार नहीं है अपितु यह एक ऐसा शिल्प है जो भावात्मक सम्वेदनाओं को अर्थगौरव प्रदान करता है। संस्कृत कवियों ने ग़ज़ल की विषय-वस्तु में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये। उनकी ग़ज़लों में प्रेम-गीतियाँ भी हैं तथा जीवन के यथार्थ का रङ्ग भी है। संस्कृत ग़ज़ल पाठक को ऐसे लोक के आलोक से आलोकित करती है जहाँ अभाव में भाव उत्पन्न होता है और वेदना में संवेदना पल्लवित होती है।

कविः पदबन्धतूलिकया यदाऽऽलिखति स्वकं हृदयम्।
तदेवोक्तं गलज्जलकम्........।[४]

कवि पदबन्धरूपी तूलिका से अपने हृदय को लिखता है तो वह ग़ज़ल कहलाती है। वे ग़ज़ल को न केवल सम्वेदना से संयोजित करते हैं अपितु समानुभूति की समकक्षता की अपेक्षा करते हैं। वे स्थूणानिखनन न्याय से पुनः-पुनः अपने मन्तव्य को पुष्ट करते हैं-

हृदयं मया सम्प्रेषितं,
पठितं त्वया वाक्याक्षरम्।।[५]

मैंने तो हृदय सम्प्रेषित किया और तुमने उसे मात्र शब्द अथवा वाक्य समझ लिया? यह भी प्रकारान्तर से ग़ज़ल का लक्षण ही कहा जा सकता है। हृदयस्थ अनुभूति का विशुद्ध उद्गार ही ग़ज़ल है।

ग़ज़ल में मसृणता तथा कठोरता का सम्प्लव हमें चकित करता है। समकालीन संस्कृत कविता अपने समय का साक्ष्य प्रस्तुत करती हुई पाठक के हृदय को विद्ध कर देती है। वह कवि के मुख से निर्गलित साक्षात् कृपाणी है-**कविता कवेर्मुखनिर्गता साक्षात्कृपाणी निष्कृपा।**[६] 'निष्कृपा कृपाणी' यह कविता का विशेषण मात्र नहीं है वरन् कविता का प्रयोजन भी है। संस्कृत के कवियों पर जो सनातन आरोप हैं कि वे स्तुतिपरक अथवा उपदेशपरक काव्य ही रचते हैं तो **राजेन्द्र मिश्र** उसका भी निराकरण करते हुए कहते हैं-

यातोऽस्ति काबीरीदशामभिराजराजेन्द्रोऽधुना।
सर्वेऽप्रमत्ताः सन्तु तेन गवेषितुं बद्धा कटी।।[७]

अधुना कवि कबीर के समान लक्ष्यवेधी वाणी का प्रयोग करेंगे क्योंकि वे सत्यान्वेषण के लिए कटिबद्ध हो गये हैं। केवल सिद्धान्त के स्तर पर ही उनका यह प्रतिज्ञा-वाक्य सीमित नहीं अपितु प्रयोगविशदता से वे अनेकत्र निदर्शन प्रस्तुत करते हैं-

'यदि अहोरात्र हृदय में नारायण का दर्शन नहीं होता है तो उनके दर्शन हेतु मन्दिर में जाना व्यर्थ है।'[८] यहाँ कवि उसी प्रकार आडम्बर का निरास करते हैं जिस

प्रकार कबीर ने आडम्बरों पर प्रहार किया था।

पापमार्गे यदारभ्य पादं धृतम्।
उन्नतिद्वारमुच्चैस्ततोऽपावृतम्।।[९]

सुन्दर व्यङ्ग्य से कवि ने भ्रष्टाचरण पर प्रहार किया है। जब से मैंने पापमार्ग में पद-निक्षेप किया, तब से उन्नति का उच्च द्वार खुल गया। स्वयं देवता अपनी व्यापकता से मेरे समीप आ गये। भ्रष्टाचरण के माध्यम से जो तात्कालिक लाभ होते हैं, उन सब की परिगणना की गई है। ग़ज़ल को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ये परिस्थितियाँ समाज में प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर हो रही हैं।

सनातनता का समकालीनता के साथ अद्भुत संयोग काव्य को अनिर्वचनीय सौन्दर्य तथा गरिमा प्रदान करता है। सुकवि राजेन्द्र मिश्र ने परम्परा को पुनर्नवा कर नूतन अर्थविच्छितियों का सर्जन किया है। 'दामिनी दलिता' ग़ज़ल में कवि ने सहृदयों को झकझोरा है–

महद्दुःखान्तनाट्यमहो नु जातं हायनं चैतत्।
हृता भूयोऽपि वैदेही द्रुपदजा कौरवैश्छलिता।।[१०]

दामिनी-दलन के कारण यह वर्ष दुःखान्तनाटक ही सिद्ध हुआ। वैदेही एक बार पुनः अपहृत हो गई और द्रौपदी कौरवों के द्वारा पुनः छली गई। वैदेही और द्रौपदी के उपमानों को प्रस्तुत कर उन्होंने दामिनी-वृत्तान्त के साथ संयोजित कर दिया। सनातनता का पुनः संयोजन, कविता को भावोद्रेकता प्रदान करता है। **आचार्य श्रीनिवासरथ** के दिवङ्गत हो जाने पर कवि ने कादम्बरी की कथा को नवीन मिथक रूप में प्रस्तुत किया–

ध्वस्तमालोक्य विन्ध्याटवीशाल्मलिम्।
बन्धुभिस्सार्धमार्तिङ्गतोऽयं शुकः।।[११]

विन्ध्याटवी के शाल्मली को ध्वस्त हुआ देखकर यह शुकशावक बन्धुओं के साथ अत्यन्त सन्ताप को प्राप्त हो गया है। आचार्य रथ को शाल्मली तथा स्वयं को शुक के रूप में परिकल्पित कर कवि ने एक नया मिथक गढ़ा है। जो कादम्बरी से सुपरिचित हैं वे इस बन्द के सौन्दर्य का सम्यक् रसास्वादन कर सकते हैं।

वर्तमान काल तो वस्तुतः विस्मरण का काल है। यहाँ कृतज्ञता का भाव तो लुप्तप्राय ही है। ऐसे दारुण काल में आचार्य राजेन्द्र मिश्र गुरु तथा मित्रों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करते हैं। स्वकीय गुरुवर **प्रो० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल** का स्मरण करते हुए उन्हें सारस्वत आलोक, गुणमय नमोवाक्, शिष्यों का स्पर्शमणि आदि विशेषणों से विभूषित किया गया। आचार्य श्रीनिवासरथ तो भगवती शारदा के यज्ञ हैं। कवि ने श्लेष के सुन्दर प्रयोग से उनके कृतित्व का सङ्केत किया-भूसुरों

(संस्कृतज्ञों/देवताओं) का वह नूतन मन्मथ (मम्मट/कामदेव) अब कहाँ है? कविता के माध्यम से आचार्य राधावल्लभ त्रिपाठी के लिए मङ्गलकामना करते हुए उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व को एकत्र निरूपित किया–

युगसम्प्लवं पश्यन्नहो निजगीतिसाधनयाऽनिशम्।
लघुनौकयाऽब्धिं धीवरस्तरते हि राधावल्लभः।।[१२]

सर्जना-पथ के सहचरों का स्मरण कवि के जीवन की धरोहर है। भावी पीढ़ी को संस्कृत के प्रति दृढ़ मूल अनुराग रखने वाले कवियों की विरासत भेंट करने वाले आचार्य राजेन्द्र मिश्र वस्तुतः प्रणम्य हैं।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र सत्यकथन से संस्कृत ग़ज़ल को विस्तार प्रदान करते हैं। विषयवस्तु में उन्होंने क्रान्तिकारी परिवर्तन कर संस्कृत ग़ज़ल को उच्चता के शिखर पर आसीन कराया है। वे राष्ट्र तथा समाज की चिन्ता करते हैं। भारत की वर्तमान दुर्दशा से वे विषण्ण प्रतीत होते हैं–

दीपकाधस्तलं तैमिरं श्रूयते,
तच्च दृष्टान्तभूतं न किं भारतम्।।[१३]

'दीपक तले अन्धेरा होता है' इस कहावत का दृष्टान्त क्या भारतदेश नहीं है? कवि ने हिन्दी के प्रचलित मुहावरे से नूतन अर्थसंक्रान्ति की है जो कि आधुनिक संस्कृत का एक नया प्रतिमान है। इसी प्रकार कवि को देवताओं की लीलाभूमि भारत राक्षसों का घर प्रतीत होने लगा है–

भारतन्तु दिविषदां रक्षसां गृहायते।[१४]

ऐसी घोर निराशापूर्ण परिस्थिति में भी कवि की अस्मिता श्लाघनीय है। क्योंकि भारत का रजःकण होना भी कवि के लिए गौरवास्पद है। भारत-भूमि का रजःकण भी रत्न से अल्प नहीं हैं।

कणोऽस्मि ध्रुवं भारतीमृत्तिकायाः,
न तत्किञ्चिदूनं नु रत्नाद् विभातम्।।[१५]

यह गौरववचन हमें रोमाञ्चित करता है तथा सभी के सोये हुए स्वाभिमान को जागृत करता है। कवि को निज देश पर गर्व है, परन्तु उसकी दुर्दशा कथमपि सहनीय नहीं है।

आचार्य राजेन्द्र मिश्र ने ग़ज़ल में सौन्दर्य तथा प्रणय को नूतन भावबोध के साथ प्रस्तुत किया। प्रणय का उदात्त रूप माधुर्य का सञ्चार करता है। कवि का उक्तिवैचित्र्य वस्तुतः हृदयावर्जक है–

पार्वणं चन्द्रमासं प्रपश्यन्नहो,
त्वन्मुखं नैव जाने कुतस्त्वागतम्।।[१६]

आश्चर्य है कि मैं तो पूनम का चाँद देख रहा था। न जाने, कहाँ से आ गया तुम्हारा मुख। पूर्णिमा के चन्द्रमा से नायिका के मुख का साम्य-यह वचोभङ्गी आधुनिकता का भान कराती है। सौन्दर्य का लक्षण कवि ने सर्वथा पृथक् रीति से प्रस्तुत किया है-

एक बार जिसे देख लेने पर हृदय में विधाता का निर्माण-कौशल अङ्कित न हो जाये-वह आकृति ही क्या?[१७]

कवि केवल सौन्दर्य-गाथा का गान ही नहीं करता अपितु संस्कृत के कवि का नारी-विमर्श भी श्लाघनीय है, वह नारी के उच्चपद को नये अर्थों में रचता है। पृथिवी पर नारी किसी की भी शत्रु नहीं है अपितु वह देदीप्यमान पुरुषत्व की मातृका (आधारभूमि) है-

नारिः केषामपि भुवि नारी।
सा नरत्वमातृका विभाता।।[१८]

'गृहिणी गृहमुच्यते' इस भाव को जब कवि ग़ज़ल में व्याख्यायित करता है तो गृहिणी का सर्वभूमिका-निर्वाहिकारूप अनायास अभिव्यक्त हो जाता है। गृहिणी के अस्तित्व की स्वीकारोक्ति करता हुआ संस्कृत कवि समाज से भी यही अपेक्षा करता है-

गृहिण्यां पर्यवस्यन्त्येव सम्बन्धाः समे नूनम्।
विशेषो जीवने कश्चिन्न सचिवाद्वाऽथ शिष्याद्वा।।[१९]

अभिराज का कवित्व नाना विच्छित्तियों में भ्रमण करता हुआ भी प्रधानरूप से दार्शनिक-भावानुभूति को आत्मसात् करता हुआ प्रतीत होता है-

अहो जीवनं स्वप्नकल्पं व्यतीतम्.......[२०]
हया इन्द्रियाणां धृता वल्गया नो।[२१]

मैं इन्द्रियों के घोड़ों की लगाम नियंत्रित नहीं कर पाया।

उपभोगितावाद का यह अनुवाद प्रायः ही प्रतीत होता है क्योंकि इन्द्रियों पर अनियन्त्रण ही उपभोगितावाद है। यही बाज़ारवाद का मूलमन्त्र है।

दार्शनिक सिद्धान्त को कविता का सौन्दर्य रोचक तथा सरल बना देता है-

जगदम्ब! लूतातन्तुजालनिभे शरीरे चिन्मयम्।
बद्ध्वाऽऽत्मकीटमिमं नु मे कियदवधि सङ्क्रीडिष्यसि।।

हे जगदम्ब! लूतातन्तु सदृश इस शरीर में चिन्मय आत्मारूपी कीड़े को बाँधकर कब तक खेल खेलती रहोगी।

कवि स्थितप्रज्ञता की अपेक्षा करते हुए कहते हैं–**मत्कृते तुल्यार्चनाऽप्यवमानना।**[२२]

जीवनदर्शन के अनेक प्रासङ्गिक सूत्रों का कवि ने सन्धान किया है। जीर्णता पर विजय पाने का विलक्षण सूत्र रचा गया है। स्वयं पर विश्वास ही अजर होने का अक्षुण्ण मार्ग है–

तुलय नान्यं न चाप्यात्मानमपि तोलय परैस्सार्धम्।
भवात्मन्येव विश्वस्तो भविष्यसि जातु नो जीर्णः।।[२३]

यह पृथिवी न धन से, न तलवार से और न ही आतङ्क से जीती जा सकती है वरन् यह तो शील से जीती जा सकती है।[२४] यह वर्तमान की दुर्दशा से उत्पन्न कवि-भाव है। धन, सत्ता तथा आतङ्क ने शील का अतिक्रमण कर दिया है अथवा शील को तिरस्कृत कर दिया है, उस शील को उच्चपीठिका पर पुनः संस्थापित करने के लिए संस्कृत-कवि कटिबद्ध है।

न जातूत्पाद्यते विनतः कदापि।[२५]
शुचिता न सम्भवाऽऽसीत् खलु कज्जलप्रकोष्ठे।[२६]
अद्य वा श्वो भवेद् ध्रुवं मरणम्.......।[२७]

इस प्रकार के अनेक सूत्र सामान्य का विशेष से संयोजन कराते हैं।

अभिराज का कवि सौष्ठव का कवि है। मुहावरों के नवार्थसन्धान द्वारा वे नित्य अपूर्व सौन्दर्य सर्जना कर चमत्कृत करते हैं–

चन्द्रिका चतुर्दिवसीयेयं भूयोऽपि कालरात्रिर्नान्ता।[२८]

चार दिन की चाँदनी है, फिर अँधेरी रात है। जब तक सेर को सवा सेर नहीं मिलता तब तक अपने ऊँचे होने का अभिमान क्यों न हो। पहाड़ के नीचे पहुँच कर ही ऊँट को अपनी लघुता का बोध होता है–

स्यादन्यथा कथं नो स्वमहोच्चताभिमानः।
लघुतामवैति करभः पर्वतपदं नु वृत्वा।।[२९]

'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्' इस सूक्ति को कवि ने लोकधर्मी शैली में रूपान्तरित करते हुए कहा–**न वा काञ्चनं हीरकं वृक्षवृन्ते, तदन्विष्याम्भो....।**[३०]

भाई! सोना और हीरा पेड़ की टहनियों पर नहीं लगे होते, उन्हें तो खोजा जाता है।

यदि सृष्टि के चमत्कार कवि को चमत्कृत करते हैं तो सुकवि अभिराज की पदशय्या हम सभी को चमत्कृत करती है। 'नमो मे नमः' इस ग़ज़ल में मूर्तिकाराय, देवकाराय, जीवकाराय, कण्ठकाराय, छिद्रकाराय, पथ्यकाराय, वैकटीकाय आदि को नमस्कार किया गया है। रदीफ और काफिये का अद्भुत संयोजन तथा लय और सौन्दर्य का समन्वय अभिराज जी की ग़ज़लों में रमणीयता का सञ्चार करते हैं।

रावणायते, दण्डकायते, शिलायते, पितृवनायते, ऊषरायते और कण्टकायते आदि क्रियापदों के प्रयोग के कारण ग़ज़ल का सौन्दर्य द्विगुणित हो गया है।

जिसके हाथ में तूलिका हो और सुन्दर वर्ण तथा पर्ण हों, वही चारु-चित्र की निर्मिति में सक्षम हो सकता है। तभी तो यह कवि-घोषणा सम्भव हो सकती है–

तीर्णो मया काव्याम्बुधिर्न बिभेमि।

आचार्य राजेन्द्र मिश्र कबीर के स्वर में स्वर मिलाकर कहते हैं कि उन्होंने झीनी-झीनी बुनी हुई काबीरी छादनिका (चादर) ज्यों की त्यों धर दी है। परन्तु मुझे तो यह विरोधाभास ही प्रतीत होता है, क्योंकि संस्कृत-सर्जना रूपी चदरिया को उन्होंने नूतन आयामों से समृद्ध किया है। ज्यों का त्यों नहीं रहने दिया। इसीलिए उनके स्वाभिमान ने उन्हें प्रतिज्ञा के लिए बाधित किया है–

लेखन्या जातोऽजरोऽमरो।
निर्घुष्टो भारतरत्नोऽहम्।।

अभिराज का कवि वह भारत रत्न है जिसके तरकश से लगभग ४०० ग़ज़लों का सन्धान हो चुका है। उनकी कविता आनन्त्य तथा सातत्य, संस्कृत की परम्परा का आनन्त्य तथा सातत्य है। आचार्य आनन्दवर्धन कहते हैं–'अवस्था, देश, काल आदि विशेषों से स्वभावतः शुद्ध वाच्य भी अनन्त बन सकता है'।[३१] कविता में वस्तुगत अनन्त सम्भावनायें होती है और आचार्य राजेन्द्र मिश्र उस अनन्तता को द्विगुणित करते हुए नूतन प्रतिमानों के प्रतिमान हैं।

जयनारायण व्यास वि०वि०, जोधपुर **प्रो० सरोज कौशल**
१७ फरवरी, २०१५ ई० **संस्कृत-विभाग**

सन्दर्भ

१. यतिष्येऽधुना, औदुम्बरी, पृ० ४२
२. या तृषाऽभूद् वृथा, औदुम्बरी, पृ० ४२
३. प्रशस्ताद्वाऽप्रशस्ताद्वा, पृ० ३

४. हविर्धानी, पृ० ५२
५. औदुम्बरी, पृ० ५६
६. औदुम्बरी, पृ० ५४
७. बद्धा कटी, ३१
८. कथमावयोः सख्यम्, ३३
९. रौरवमुद्घाटितम्, पृ० १८
१०. दामिनी दलिता, पृ० १०
११. संस्कृज्ञो न को जायते सव्यथः, पृ० ५२
१२. तनुते हि राधावल्लभः, पृ० २१
१३. प्रमादेन नामागतम्, पृ० ७
१४. किन्न मन्दुरायते, पृ० ११
१५. महानायकत्वम् न वाऽऽप्तम्, पृ० ४४
१६. प्रमादेन नामाऽगतम्, पृ० ७
१७. सकृदपि निपीय न यां विधेः कौशलमुरस्यनुशंसितम् ... साऽऽकृतिरेव का। पृ० ६
१८. दुहिता जाता, पृ० २०
१९. प्रशस्ताद्वाऽप्रशस्ताद्वा, पृ० ३
२०. कथं गोपयानि, पृ० ६२
२१. कथं गोपयानि, पृ० ६२
२२. तुल्यार्चनाऽप्यमानना, पृ० ५८
२३. पृच्छ स्वयम्, पृ० ५३
२४. न वित्तैर्न खड्गैर्न चातङ्कभारैः।
२५. निर्गुरु ज्ञातम्, पृ० ४०
२६. स्वप्नो मया न दृष्टः, पृ० २२
२७. ते कृतज्ञोऽहम्, पृ० ९
२८. क्षमसे यदि, पृ० ५५
२९. कथयन्ति ते सगर्वम्, पृ० ४१
३०. त्वमेको गतः, पृ० २६
३१. ध्वन्यालोक, ४।७

नान्दीवाक्

पिछले दो वर्ष (२०१४-२०१५) रचना एवं प्रकाशन दोनो ही दृष्टियों से स्मरणीय रहे। ईस्टर्नबुकलिंकर्स, दिल्ली को प्रकाशनार्थ सन्धानसिन्धु (हिन्दी शोध लेख-संग्रह) तथा ज्ञानाञ्जनशलाका (संस्कृत शोध लेख-संग्रह) दिया।

अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद ने महर्षिचरितामृतम् काव्य प्रकाशित किया जो महर्षिकल्प, पद्मश्री आचार्य आद्याप्रसाद मिश्र जी के व्यक्तित्व-कर्तृत्व पर आधारित है।

वैजयन्तप्रकाशन, इलाहाबाद ने विद्योत्तमानाटिका तथा नाट्यसप्तपदम् का अभिनव विशिष्ट संस्करण तो प्रकाशित किया ही, कुछ नई कृतियाँ भी उपन्यस्त कीं-औदीच्ययक्षगानम् (नौ यक्षगानों का संग्रह), औदुम्बरी (६७ गलज्जलिकाएँ) तथा गीतभारतम् (१२ सर्गों में विभक्त वृहत् राष्ट्रिय काव्य)।

उ०प्र० संस्कृतसंस्थान, लखनऊ ने प्रकाशनार्थ एक यात्राग्रन्थ चोलाञ्चलदर्शनम् स्वीकार किया है। स्वयं राष्ट्रिय संस्कृतसंस्थान, नई दिल्ली तथाउसके लखनऊ-परिसर ने अभिराजदण्डकम् (२३ दण्डक-संग्रह) तथा शतकपञ्चदशी को (१५ शतकों का संग्रह) अधर में लटका रखा है पिछले दो वर्षों से।

इस युग के लेखकों के समक्ष प्रकाशन एवं ग्रन्थ-वितरण की विकट समस्या है। फिर भी मन है कि मानता नहीं! हम कुछ न कुछ प्रकाशित करते ही रहते हैं, बिना कठिनाइयों की परवाह किये। सहृदय एवं प्रतिष्ठित विदुषी प्रो० सरोज कौशल ने (जोधपुर विश्वविद्यालय), औदुम्बरी की समीक्षा यत्नपूर्वक की है, एतदर्थ कृतज्ञ हूँ। इस सारवती समीक्षा से पाठकों का प्रभूत लाभ होगा।

इलाहाबाद
३ मई, २०१५ ई०

सहृदय-वंशवद
अभिराजराजेन्द्रमिश्र

अभिराजमधिकृत्य

केवलं ग़ज़ल इति प्रसिद्धायाः काव्यविधायाः बलात् संस्कृतीकरणं रुचिरं नास्ति। इदन्तु पण्डितम्मन्यानां कवीनां हठधर्मितैव प्रकाशयति।

अद्यतनग़ज़लगीतिकारेषु सर्वथा कुशलः नवकाफिया-रदीफप्रयोगपटुः सरसमधुरा ऽभिव्यक्तिप्रवीणः कविरस्ति **अभिराजराजेन्द्रमिश्रः**।

मन्यते तु स श्रेष्ठः संस्कृतग़ज़लकविर्यस्य ग़ज़लेष्वभिनवोक्तिनैपुण्यं साम्प्रतिककथ्यानां निवेशश्च रसिकहृदयानावर्जयतः।

दूर्वा (पुनरुन्मेषाङ्कः)	**डॉ० हरीराम आचार्यः**
पृ० ८२-८६	**साम्प्रतिकसंस्कृतकवितायां**
मार्च-मई, २००४ ई० अङ्कः	**नव्यत्वस्य मीमांसनम्**

•

विषयानुक्रमणिका

शीर्षकम्		पृष्ठसंख्या
१.	गणिकेव तेऽस्ति कृतज्ञता	१८-१९
२.	गन्तुकामोऽस्म्यहम्	२०-२१
३.	प्रशस्ताद्वाऽप्रशस्ताद्वा	२२-२३
४.	कुठारोऽभवम्	२४-२५
५.	नो स्मरिष्यामि	२६-२७
६.	तदायतिरेव का?	२८-२९
७.	प्रमादेन नामाऽगतम्	३०-३१
८.	कज्जलानां प्रकोष्ठे	३२-३३
९.	ते कृतज्ञोऽहम्	३४-३५
१०.	दामिनी दलिता	३६-३७
११.	किन्न मन्दुरायते?	३८-३९
१२.	त्वमेवासि बन्धो!	४०-४१
१३.	कीदृशाः कीदृशाः?	४२-४३
१४.	अयं वीक्षते	४४-४५
१५.	मां नु सर्वसहम्	४६-४७
१६.	कोऽपि कथयेत्	४८-४९
१७.	दृश्येऽधुनाऽवदातः	५०-५१
१८.	रौरवद्वारमुद्घाटितम्	५२-५३
१९.	जितं मयका	५४-५५
२०.	दुहिता जाता	५६-५७
२१.	तनुते हि राधावल्लभः	५८-५९
२२.	स्वप्नो मया न दृष्टः	६०-६१
२३.	कवीन्द्रोऽभवम्	६२-६३
२४.	किन्नु काञ्चनेन	६४-६५
२५.	वराका राजनेतारः	६६-६७
२६.	विधे! कुर्यामहं किम्?	६८-६९
२७.	त्वमेको गतः	७०-७१
२८.	केऽपि कछवाहाः	७२-७३
२९.	वात्यापराजितोऽभूत्	७४-७५
३०.	यतो वयमास्तिकाः	७६-७७
३१.	बद्धा कटी	७८-७९
३२.	गणयामि कथं कं कम्?	८०-८१
३३.	कथमावयोः सख्यम्?	८२-८३

३४.	मृत्युरहम्	८४-८५
३५.	नमो मे नमः	८६-८७
३६.	विचित्रं व्रतम्	८८-८९
३७.	मर्म विरेचितम्	९०-९१
३८.	कन्यकायां रतिर्मे	९२-९३
३९.	तव नयनपाथोनिधिं वन्दे	९४-९५
४०.	निर्गुरु ज्ञातम्	९६-९७
४१.	कथयन्ति ते सगर्वम्	९८-९९
४२.	यतिष्येऽधुना	१००-१०१
४३.	केवलं वचसा	१०२-१०३
४४.	महानायकत्वं न वाऽऽप्तम्	१०४-१०५
४५.	भारतयत्नोऽहम्	१०६-१०७
४६.	वृथा कृकलासता	१०८-१०९
४७.	यदाऽभूत्पार्थिवो भोजः	११०-१११
४८.	परिचयैरलं बन्धो!	११२-११३
४९.	नो क्वचित्	११४-११५
५०.	अपार्थकं युद्धं कृतम्	११६-११७
५१.	न कस्यापि दृष्टं मुखम्	११८-११९
५२.	जातोऽस्मि भक्षणाय	१२०-१२१
५३.	संस्कृतज्ञो न को जायते सव्यथः?	१२२-१२३
५४.	अमृतोऽस्म्यहं जातः	१२४-१२५
५५.	पृच्छ स्वयम्	१२६-१२७
५६.	सा तृषा ऽभूद् वृथा	१२८-१२९
५७.	क्षमसे यदि	१३०-१३१
५८.	पठितं त्वया वाक्याक्षरम्	१३२-१३३
५९.	सम्प्रति विधे! क्व यानि?	१३४-१३५
६०.	तुल्यार्चनाऽप्यवमानना	१३६-१३७
६१.	लोलार्को गतः	१३८-१३९
६२.	विपदो न लज्जध्वे कथम्?	१४०-१४१
६३.	दृष्टिर्नु ते निपतिष्यति	१४२-१४३
६४.	कथं गोपयानि?	१४४-१४५
६५.	त्वं मया वीक्षिता	१४६-१४७
६६.	नग्ननृत्येन नो	१४८-१४९
६७.	दीपोऽस्मि	१५०-१५१
६८.	औदुम्बरी	१५२-१५३
६९.	अभिराज-साहित्य	१५४-१६०

●

औदुम्बरी

।। चरन्वै मधुविन्देत चरन्स्वादुमुदुम्बरम् ।।

२.६.२०१२ से २४.१.२०१५ के बीच प्रणीत
गलज्जलिकाएँ

गणिकेव तेऽस्ति कृतज्ञता

अज्ञानकान्तारस्थिता खिन्नैव भाति बहुज्ञता।
आप्तं न पुरुषं जिन्वती गणिकेव तेऽस्ति कृतज्ञता।।१।।

मौकुलिकुलाये स्थापयस्यण्डस्थितं ननु जातकम्।
बन्धो! प्रतीयत एव ते तेनैव मञ्जुमनोज्ञता।।२।।

दृष्ट्वैव पापघटं भृतं लङ्कापतेस्तमहोऽत्यजः।
ननु दर्शिता भवता समुचिते ह्यवसरे समयज्ञता।।३।।

त्वं वेत्सि मामज्ञं सखे! त्वां वेद्म्यहं खलशेखरम्।
निर्णयति कुलपतिरेव, कस्य गरीयसी किल विज्ञता।।४।।

भक्तिर्बहूनुपसेवते ते ऽसौ जबालासन्निभा।
इह सूतवानसि सत्यकाममितोऽधिका न नयज्ञता।।५।।

दृग्भ्यां शृणोषि समन्ततः कर्णद्वयेन विलोकसे।
अपदश्चलसि चित्रा नु ते ब्रह्मोपमैव समज्ञता।।६।।

वृद्धिं न सहसे कथमपि त्वयि वार्त्तिकं श्रुतचरमिदम्।
हयमोचनेऽसि पुरन्दरः प्रथितैव ते शतयज्ञता।।७।।

ननु गल्लवादनमात्रमेव मया कथञ्चित् शिक्षितम्।
सुषिरेऽवनद्धे ततघने क्व न ते प्रशस्तगुणज्ञता।।८।।

अभिराजमपि शिष्यं विधाय गुरो! कृतार्थय जीवनम्।
चिरसंस्तुता स्यादिह यथा तव सिन्धुता मम बिन्दुता।।९।।

रात्रि : १०.४५
संस्थान-अतिथिकक्षः, २.०६.२०१२ ई०

•

अज्ञान के जङ्गल में उद्भ्रान्त पण्डिताई भी दुःखी ही रहती है। तुम्हारी कृतज्ञता भी मित्र! विश्वसनीय व्यक्ति (आश्रय) को न चुन सकने वाली गणिका के समान है।।१।।

अण्डे में विद्यमान जातक (सन्तान) को कौवों के घोसले में स्थापित कर रहे हो। बन्धुवर! बस इतने से ही समझ में आ रही है तुम्हारी विलक्षण चातुरी।।२।।

लङ्कापति (रावण) के पाप-घट को भरा हुआ देखकर ही (विभीषण!) तुमने उसका त्याग कर दिया। (भैया विभीषण!) आपने सही अवसर पर अपनी नीतिमत्ता प्रदर्शित की।।३।।

मित्र! तुम मुझे मूर्ख समझते हो और मैं तुम्हें कमीनो का शिरोमणि मानता हूँ। अब कुलपति ही निर्णय करेगा कि किसकी समझदारी श्रेष्ठ है?।।४।।

जबाला के समान तुम्हारी भक्ति (निष्ठा) भी बहुतों की सेवा करती रही है। इसी के बल पर पैदा कर लिया तुमने **सत्यकाम** (जैसे अपने भाग्य) को। इससे अधिक नीति-निपुणता और क्या होगी?।।५।।

दोनों आँखों से (तुम) चौतरफा सुन लेते हो और दोनों कानों से देख लेते हो। बिना पैर के ही चल भी लेते हो। विलक्षण है परब्रह्म के समकक्ष तुम्हारी समग्रता।।६।।

तुम्हारे विषय में यह वार्तिक सुना जा चुका है कि (तुम किसी की) वृद्धि (उन्नति) सह नहीं पाते हो। (दूसरों का) घोड़ा चुराने में तुम पुरन्दर हो। जगजाहिर है तुम्हारी शतयज्ञता।।७।।

मैंने तो जैसे-तैसे बस गाल भर बजाना सीखा है। परन्तु बन्धो! सुषिर (वंशी) अवनद्ध (मृदंगादि) तत (वीणा) तथा घन (कांस्यताल) तुम्हें कहाँ महारत नहीं हासिल है? ।।८।।

हे गुरो! **अभिराज** को भी (अपना) शिष्य बना कर जीवन को कृतार्थ बना दो जिससे कि चिरसंस्तुत (जगत्प्रसिद्ध) हो जाय, आपकी सिन्धुता और मेरी बिन्दुता।।९।।

•

गन्तुकामोऽस्म्यहम्

निर्भरं मां सखे! पश्य यायावरं।
विश्रमार्थं क्वचिद् गन्तुकामोऽस्म्यहम्।।१।।

संसृतौ हन्त जाता वृथा मे रतिः।
साम्प्रतं श्रीहरौ रन्तुकामोऽस्म्यहम्।।२।।

मर्षणीयोऽस्मि भो दुष्कृतानां कृते।
किञ्च, युष्मानपि क्षन्तुकामोऽस्म्यहम्।।३।।

भेदरेखा क्वचिच्चापि कृष्टा मया।
तामिदानी स्वयं मार्ष्टुकामोऽस्म्यहम्।।४।।

हन्त, भूयो भवेत्सङ्गमो वा न वा।
त्वां तथाप्यङ्ग! सन्द्रष्टुकामोऽस्म्यहम्।।५।।

तीरसंस्थः कियद्वा विभेष्यामि भोः।
तन्महाम्भोनिधिं तर्तुकामोऽस्म्यहम्।।६।।

कीर्तिसीता यथाऽऽप्ता गुणैर्नात्मनः।
रावणीभूय तां हर्तुकामोऽस्म्यहम्।।७।।

रासभा अश्वतां यान्ति कैर्नूद्यमैः।
तच्च दिल्ल्यां वसन् ज्ञातुकामोऽस्म्यहम्।।८।।

यादृशश्चासि, मह्यं परं रोचसे।
सादरं लोक! तद् वक्तुकामोऽस्म्यहम्।।९।।

रात्रौ नववादनम्
संस्थान-अतिथिकक्षः, ३.०६.२०१२ ई०

●

मित्र! देख लो आँख भर मुझ जैसे यायावर (पथिक) को। विश्राम करने के लिए (अब) कहीं जाना चाहता हूँ।।१।।

संसार के प्रति मेरी आसक्ति (अब) झूठी सिद्ध हो चुकी है। अब तो श्री हरि में रमण करने की इच्छा हो चली है मेरी।।२।।

मेरे भाइयों! अपने दुष्कृत्यों के लिए (आप सब द्वारा) क्षमा करने योग्य हूँ। इतना ही नहीं, तुम लोगों को भी क्षमा करना चाहता हूँ (तुम्हारी गल्तियों के लिए।।३।।

यदि मैंने कहीं भी भेद-भाव की रेखा खींची थी तो इस समय उसे स्वयं ही मिटा देने को इच्छुक हूँ।।४।।

ओफ् पुनः (अगले जन्मों में) भेंट हो, या न हो। मेरे प्रियवर! फिर भी तुम्हें देखने की ललक बनी रहेगी।।५।।

तट पर खड़ा-खड़ा कितना भय खाता रहूँगा, भाई! इसलिए महासागर को पार ही कर लेना चाहता हूँ।।६।।

कीर्तिरूपी सीता अपने गुणों से तो प्राप्त हो नहीं पाई। तो अब रावण बनकर ही उसे अपहृत करना चाहता हूँ।।७।।

भला किस उद्यम (कौशल) से गधे, घोड़े का पद प्राप्त कर लेते हैं? यह गुर दिल्ली में रहकर जानना चाहता हूँ।।८।।

जैसे भी हो, मुझे बहुत पसन्द हो। हे लोक! (मद्युगीन समाज) यह तथ्य आदरपूर्वक तुम्हें बताना चाहता हूँ।।९।।

●

प्रशस्ताद्वाऽप्रशस्ताद्वा

उपेताऽद्वैततां प्रीतिर्निकामं भङ्गुरैवाऽसीत्।
शिखररूढो न को निपतेदिदानीं वाऽथ पश्चाद्वा।।१।।

मया कुम्भीलकोऽङ्गीकृत्य बन्धुत्वेन, यद् विहितम्।
फलं सोढव्यमासीत्तस्य, पुण्याद्वाऽथ पापाद्वा।।२।।

प्रमादं मा कृथा बन्धो! न शास्त्रे स्वैरता युक्ता।
भवेन्ननु वृत्तभङ्गोऽप्यक्षराद् दीर्घाददीर्घाद्वा।।३।।

अवश्यं वर्तमानादेव भेतव्यं दुराधर्षात्।
भयं किं कल्पितान्नृणामतीताद्वा भविष्याद्वा।।४।।

प्रसूतोऽभुक्तमूले चेज्जगौ तुलसी सियारामम्।
अलं तल्लग्नसारण्या, किमार्द्रातोऽथ पुष्याद्वा।।५।।

गृहिण्यां पर्यवस्यन्त्येव सम्बन्धाः समे नूनम्।
विशेषो जीवने कश्चिन्न सचिवाद्वाऽथ शिष्याद्वा।।६।।

न किं श्वासाज्जुहोमि कलेवरं मखवेदिकां कृत्वा।
किमन्यत्पुण्यमाप्तव्यं हुतादथवा हविष्याद्वा।।७।।

समुद्रे व्योम्नि चेद्यात्रा ध्रुवं परमेश्वराधीना।
अलं प्रस्थानशुभयोगात्प्रशस्ताद्वाऽप्रशस्ताद्वा।।८।।

कुले भवभूतिपण्डितराजयोर्जातोऽभिराजोऽहम्।
नृपान्नापेक्षितं किञ्चिन्मदीयं नो समाजाद्वा।।९।।

रात्रि : ९.२५ वादने
संस्थानातिथिकक्षे, ३.०६.२०१२ ई०

•

परिपूर्ण रूप से अद्वैतता को प्राप्त प्रीति टूटने-बिखरने ही वाली थी (क्यों न हो ऐसा?) शिखर पर पहुँचा कौन व्यक्ति अभी (इसी समय) या बाद में (वहाँ से) गिरेगा नहीं? ।।१।।

चोर (साले) को भाई के रूप में अपनाकर मैंने जो (अकृत्य) किया था उसका फल तो (मुझे) भोगना ही था–पुण्य से अथवा पाप से।।२।।

मेरे भाई! प्रमाद मत करो। शास्त्र में मनमानापन नहीं चलता है। एक अक्षर से भी छन्दोभङ्ग हो सकता है–चाहे वह दीर्घ हो अथवा लघु।।३।।

दुराधर्ष (अनतिक्रमणीय) वर्तमान से ही अवश्य भय खाना चाहिए। मनुष्यों द्वारा कल्पित किये गये **अतीत** से अथवा **भविष्य** से क्या डरना? ।।४।।

अभुक्तमूल नक्षत्र में भी पैदा होकर यदि (गोस्वामी) तुलसीदास ने **सियाराम** का गुणगान किया तो फिर उनकी **लग्नसारिणी** किस काम की रही? आर्द्रा अथवा पुष्य (में भी जन्म लेने) से क्या मिलता? ।।५।।

सारे के सारे सम्बन्ध, निश्चय ही घरवाली में ही समाए रहते हैं। जीवन में पृथक् सचिव अथवा शिष्य होने से कोई विशेष (लाभ) नहीं होता (पत्नी सबकी भूमिका निभाती है अकेली ही)।।६।।

शरीर को यज्ञकुण्ड बनाकर क्या श्वासों का हवन नहीं कर रहा हूँ? हवन की गई अथवा (भविष्य में) हवन की जाने वाली सामग्री से और कौन पुण्य मुझे प्राप्त करना है? ।।७।।

यदि यात्रा समुद्र अथवा आकाश में हो रही है तो निश्चय ही वह परमेश्वर (की कृपा) के अधीन है। फिर तो यात्रा का प्रस्थान-योग प्रशस्त हो अथवा अप्रशस्त, कोई फर्क नहीं पड़ता।।८।।

भवभूति और पण्डितराज के वंश में **अभिराज** (राजेन्द्र) पैदा हुआ हूँ। (परन्तु) न राजा से मेरी कोई अपेक्षा है, न ही समाज से।।९।।

•

कुठारोऽभवम्

भेदिनां सम्प्रदाये कुठारोऽभवम्।
आयुधानां निकाये कुठारोऽभवम्।।१।।

केन निर्मापितः केन वा निर्मितः।
हा विधे! आततायी कुठारोऽभवम्।।२।।

छेदनं भेदनं मल्ललाटाङ्कितम्।
शोणितास्वादपायी कुठारोऽभवम्।।३।।

मानवानां वनानां पशूनामरिः।
मृत्युसन्तापदायी कुठारोऽभवम्।।४।

कं नु लोकोपकारं स्मरेयं स्वकम्।
सौहृदस्वप्नशायी कुठारोऽभवम्।।५।।

मय्यहो जामदग्न्यस्तथा प्रीतिमान्।
येन तन्नामदायी कुठारोऽभवम्।।६।।

जायते यन्मणिस्पर्शतः काञ्चनम्।
तत्समज्ञाऽवसायी कुठारोऽभवम्।।७।।

यन्नु लौहं दृढत्वप्रतीकं मतम्।
वंशजस्तस्य मायी कुठारोऽभवम्।।८।।

हन्त मर्मन्तुदा मे व्यथा, निष्फला।
कस्य नो प्रत्यवायी कुठारोऽभवम्।।९।।

खण्डितो नैकधा दुष्प्रहाराहतः।
वह्निना युक्तकायी कुठारोऽभवम्।।१०।।

रात्रौ : ८.४५ वादने
संस्थानातिथिकक्षे, ५.०६.२०१२ ई०

काटने वालों के सम्प्रदाय में मैं कुल्हाड़ा बना। हथियारों के समूह में मैं कुल्हाड़ा बना।।१।।

किसने बनवाया (मुझे) अथवा किसने निर्मित किया? हे विधाता! आततायी कुल्हाड़ा बना मैं।।२।।

मेरी भाग्यलिपि में (ही) लिखा था–छिन्न-भिन्न करना। खून के स्वाद का जायका लेने वाला कुल्हाड़ा बना मैं।।३।।

मनुष्यों, वनों और पशुओं का अरि, मृत्यु-सन्ताप देने वाला कुल्हाड़ा बना मैं।।४।।

अपने किस लोकोपकार को भला स्मरण करूँ? मित्रता (सद्भावना) का स्वप्न देखने वाला कुल्हाड़ा बना मैं।।५।।

आश्चर्य है कि **जमदग्निनन्दन परशुराम** भी मुझमें कुछ ऐसे प्रीतिमान हो उठे कि उन्हीं के नाम का स्मरण कराने वाला **(परशुराम)** कुल्हाड़ा बना मैं।।६।।

जो (लोहा) मणि (स्पर्शमणि=पारस) के स्पर्शमात्र से काञ्चन बन जाता है, उस मणि की कीर्ति को भी समाप्त कर देने वाला कुल्हाड़ा बना मैं (अर्थात् पारस को छूकर भी मैं सोना नहीं बना। लोहे का कुल्हाड़ा ही बना रहा।।७।।

जो लोहा दृढ़ता का प्रतीक माना जाता है, उसी के खानदान में जनमा मायावी कुल्हाड़ा बना मैं।।८।।

आह! मर्म को कुरेदने वाली तथा निष्फल है मेरी व्यथा (मेरी पीड़ा भी किसी को प्रभावित नहीं करेगी) भला किसका अनभीष्ट (वैरी) कुल्हाड़ा नहीं बना मैं? ।।९।।

दुष्प्रहारों से आहत होकर (मैं भी) अनेक बार खण्डित हुआ। परन्तु पुनः बन गया (साबूत) कुल्हाड़ा आग की ऊष्मा में जोड़-जोड़ कर।।१०।।

•

नो स्मरिष्यामि

यथाकालं पुनर्जन्माऽप्य बालोऽहं भविष्यामि।
अहो, भूयोऽपि कृत्रिमपुत्रिकाभिरहानि नेष्यामि।।१।।

पुनर्जननीसमुत्सङ्गे लयेरिकया मुदङ्गमितः।
शिथिलयन्नात्मसंहननं घनस्वापं गमिष्यामि।।२।।

पुनस्सा मातुले चन्द्रे समुत्कण्ठा सनिर्बन्धा।
अमृतगाथां पितामह्योदितां भूयोऽपि पास्यामि।।३।।

पुनस्सा चर्चरी मित्रेषु तत्कूकूरुतं रम्यम्।
प्रगुप्तान्वेषणिकया स्वीयचित्तं रञ्जयिष्यामि।।४।।

भवेद्भूयो ऽक्षरारम्भः समासक्तिर्धुसद्वाण्याम्।
पुनश्छन्दोविचित्या निर्भरं क्रीडां करिष्यामि।।५।।

मिलिष्यन्त्येव पुनरपि कान्तवल्लभभास्करप्रणवाः।
समं मणिमाधवाभ्यां नवयुगं भूयो विधास्यामि।।६।।

जगन्नाथः प्रतनुकण्ठः भवेज्जन्मान्तरे कान्तः।
सनातन एव कान्तस्स्यादहं को वा भविष्यामि।।७।।

नवीनः परिचयो भविता नवीना स्थापना चापि।
पुराणी प्रत्यभिज्ञप्तिर्विनङ्क्ष्यति नो स्मरिष्यामि।।८।।

प्रभो! एतद्युगीना रावणाः सार्धं न जायेरन्।
यदि स्युस्ते, जनिं स्वां तर्हि सप्रणयं निषेत्स्यामि।।९।।

रात्रौ : १०.२५ वादने
संस्थानातिथिकक्षे, ५.०६.२०१२ ई०

समय आने पर पुनः (नया) जन्म पाकर मैं बच्चा बनूँगा। वाह! एक बार पुनः गुड्डे-गुड़ियों (के खेल) से दिन बिताऊँगा।।१।।

लोरियों से आह्लादित होकर, अपने शरीर को शिथिल करता हुआ मैं पुनः माँ की गोदी में गहरी नींद में सो जाऊँगा।।२।।

फिर चन्दा मामा के प्रति होगी वही ललक और (उन्हें) प्राप्त करने की जिद। दादी के मुँह से कढी अमृतसनी कहानियों को पुनः सुनूँगा।।३।।

फिर होगी मित्रों के साथ वही धमाचौकड़ी और वहीं रमणीय **लुकाछिपी** का खेल! **बुझौलिया** के खेल से अपना मनोरञ्जन करूँगा।।४।।

फिर होगा (विद्यालय में) मेरा अक्षरारम्भ! (फिर होगी) देववाणी संस्कृत में गहरी आसक्ति! फिर एक बार छन्दोरचना से जी भर क्रीड़ा करूँगा।।५।।

फिर एक बार मिलेंगे कान्त (रमाकान्त शुक्ल) वल्लभ (राधावल्लभ) भास्कर (भास्कराचार्य त्रिपाठी) तथा प्रणव (इच्छाराम द्विवेदी)। मणि (जनार्दनप्रसाद पाण्डेय) तथा माधव (हर्षदेव) को साथ लेकर पुनः नवयुग का निर्माण करूँगा।।६।।

(कहीं ऐसा न हो कि) अगले जन्म में रमाकान्त शुक्ल, जगन्नाथ पाठक जैसे सौम्यकण्ठ हो जायँ। या फिर, रेवाप्रसाद द्विवेदी 'सनातन' जी ही रमाकान्त शुक्ल न हो जायँ? (उस परिवर्तन में) मैं (अभिराजराजेन्द्र) किसकी तरह हो जाऊँगा? ।।७।।

नया परिचय होगा, नई स्थापना भी होगी। पुरानी (इस जन्म की) पहचान नष्ट हो जायेगी। कुछ भी स्मरण नहीं कर पाऊँगा।।८।।

प्रभो! (बस यही प्रार्थना है कि) इस युग के **रावण** (पुनः) साथ ही साथ न पैदा हो जायँ। यदि उन्हें भी पैदा ही होना है तो फिर मैं प्रेमपूर्वक अपने पुनर्जन्म को (उनके साथ) खारिज करना चाहूँगा।।९।।

•

तदाऽऽयतिरेव का?

वाप्या यया न तृषा हृता तस्याः सखे! स्मृतिरेव का?
नियतिर्नितान्तबलीयसी तस्याः सखे! गतिरेव का?।१।।

एकान्तरतिरिह चारुदत्ते नास्ति कस्याश्चिद्यदि।
तस्यास्तु गणिकायास्तदा सौन्दर्यसङ्गतिरेव का।।२।।

दयितं यियासुं प्रेक्ष्य या जाता न हन्त जलाकुला।
दृष्टेः प्रियायास्तर्हि भो विरहव्यथाऽऽहतिरेव का।।३।।

सकृदपि निपीय न यां विधेः कौशलमुरस्यनुशंसितम्।
चञ्चलहृदयमृगवागुराभूताऽथ साऽऽकृतिरेव का।।४।।

अह्नाय यद्गुणचन्द्रिकास्नाताः समे प्रतिवेशिनः।
चित्तप्रूसनविकासिनी, यदि नैव, सन्ततिरेव का।।५।।

मौनेन यस्या नष्टमेव ममाऽभिशापितजीवनम्।
स्वात्मानमम्बां भणति सा मम हन्त सम्प्रति, सैव का।।६।।

कीरो वरं ननु पञ्जरे हरिनामगीतोत्थापकः।
प्रत्युषसि कर्णविभेदिनी कलविङ्कसंहतिरेव का।।७।।

सन्त्येव कुटिला भ्रामिकास्त्रिदिशस्सरण्योऽनेकशः।
या त्वद्गृहं नासादयेन्निभृतं सखे! सृतिरेव का।।८।।

गीतान्यधीत्याख्याहि मामाह्लादयन्ति मनो न वा।
मय्यपसृते जाता समुच्छ्वसितिस्तदाऽऽयतिरेव का।।९।।

अपराह्णे : ४.२२ वादने
संस्थानातिथिकक्षे, ७.०६.२०१२ ई०

•

जिस बावड़ी ने (लोगों) की प्यास नहीं बुझाई, मित्र! उसे क्या स्मरण करना? नियति (भाग्यलिपि) अतिशय बलवती होती है। मित्र! उसकी निश्चित गति कैसी? ।।१।।

यदि **चारुदत्त** के प्रति इस संसार में किसी की एकान्त-रति (नैष्ठिक प्रीति) नहीं है तो उस गणिका (वसन्तसेना) की सुन्दरता का औचित्य ही क्या? ।।२।।

प्रियतम को प्रस्थानोत्सुक देखकर जे अश्रुपर्याकुल नहीं हो उठी हाय! प्रियतमा की उस दृष्टि (आँख) का विरह-व्यथा से विथर जाना ही कैसा?।।३।।

एक ही बार डूब कर जिसे देख लेने पर, हृदय में विधाता का निर्माण-कौशल अङ्कित नहीं हो उठा, चञ्चल हृदय-रूपी हिरन को फँसाने वाली बन्धनरज्जु (जाल) सरीखी वह आकृति (रमणी) ही क्या? ।।४।।

सचमुच सारे के सारे पड़ोसी जिसकी गुणचन्द्रिका में स्नान करते हों और जो चित्त-प्रसून (हृदयपुष्प) की विकासिनी हो–यदि ऐसी न हो तो फिर वह सन्तति ही क्या? ।।५।।

(युवावस्था में) जिसकी चुप्पी से मेरा अभिशप्त जीवन ही नष्ट हो गया जो अब अपने को माँ समझती है (बच्चों का) उससे मेरा क्या लेना-देना? ।।६।।

हरिनाम सुनाकर जगाने वाला पिंजरे में बन्द सुआ भी सचमुच श्रेष्ठ हैं। भोर होते ही, कान फोड़ने वाली (मुक्त) गौरय्यों की वह टोली किस काम की? ।।६।।

टेढ़ी-मेढ़ी, भ्रान्ति पैदा करने वाली राहें तीनों दिशाओं में कितनी ही हैं! **परन्तु जो चुपचाप तुम्हारी देहरी तक न पहुँचा दे। मित्र! वह राह ही कैसी? ।।८।।**

मेरे गीतों को सुनकर बताओ तो कि ये मुझे और मेरे मन को आह्लादित करते हैं या नहीं? मेरे चले जाने पर यदि तुम्हें आनन्द-रोमाञ्च हुआ भी तो उसकी नियति क्या? (मैं तो कृतार्थ नहीं हुआ न)।।९।।

●

प्रमादेन नामाऽगतम्

विस्मृतौ ते मया भूरियत्नाः कृताः।
किन्तु वाचि प्रमादेन नामाऽगतम्।।१।।

पार्वणं चन्द्रमासं प्रपश्यन्नहो।
त्वन्मुखं, नैव जाने, कुतस्त्वागतम्।।२।।

दीपकाधस्तलं तैमिरं श्रूयते।
तच्च दृष्टान्तभूतं न किं भारतम्।।३।।

द्वारि तिष्ठन्तमालोक्य दुःखातिथिं।
व्याहृतं द्रागकस्मान्मया स्वागतम्।।४।।

कीदृशीयं रतिर्दर्शिता बन्धुभिः।
मन्निवासाय लाक्षागृहं कारितम्।।५।।

हन्त, नीतं पराऽनुग्रहैर्यत्त्वया।
जीवनं तन्मयैकाकिना यापितम्।।६।।

सोपहासं नु बाकाद्यतो द्रावितः।
हन्त, हंसेन भूयस्तदासादितम्।।७।।

वाचि सिद्धेन कीरेण केनागसा।
जीवनं दुर्गमे पञ्जरे धारितम्।।८।।

यन्मनोमन्थने कालकूटं सृजेत्।
प्रत्नवृत्तं सखे! तत्कथं स्मारितम्।।९।।

सन्ध्यायां : ६.४५ वादने
संस्थानातिथिकक्षे, ८.०६.२०१२ ई०

•

तुम्हें भुलाने में मैंने प्रभूत यत्न किये। तथापि प्रमादवश (मेरी) जबान पर (तुम्हारा) नाम आ (ही) गया।।१।।

आश्चर्य है, मैं तो देख रहा था पूनम का चाँद! नहीं जानता कि कहाँ से उस पर तुम्हारा मुख दीखने लगा।।२।।

सुनते हैं कि दिये के तले में अँधेरा होता है। तो क्या इसका दृष्टान्तभूत भारत राष्ट्र नहीं है? ।।३।।

दरवाजे पर खड़े हुए **दुःखरूपी अतिथि** को देखकर मैंने अकस्मात् ही उसके लिये **'स्वागत'** कहा (अतिथि के स्वागत की आदतवश)।।४।।

भाइयों ने यह कैसी (विलक्षणा) प्रीति दिखाई कि मेरे आवास-हेतु **लाक्षागृह** बनवा दिया।।५।।

ओफ्, दूसरों की टुकड़खोरी पर जो जीवन तुमने (आराम से) बिता दिया, वही (जीवन) मैंने **अकेलेपन** में काट लिया।।६।।

जिन बगुलों की टोली से, उपहास करके भगाया गया था। हाय! राजहंस ने दुबारा पुनः उसी का दामन पकड़ा।।७।।

(सोचता हूँ कि) वाक्सिद्ध शुक ने, किस अपराध के कारण (अपनी) जिन्दगी कठोर पिंजरे में बिताई।।८।।

मित्र! वह पुरानी बात तुमने क्यों स्मरण करा दी जो मन को मथ दे और कालकूट पैदा कर दे।।९।।

•

कज्जलानां प्रकोष्ठे

कज्जलानां प्रकोष्ठे न यायाः सखे!
एकरेखा तदीया भवेत्सङ्गता।।१।।

वीथिका प्रत्यभिज्ञायते साऽखिलैः।
तत्र गत्वा सकृच्चापि कीर्तिर्गता।।२।।

शैशवाद् वार्द्धकेऽहं झटित्यागतः।
यत्क्षणे जन्मदात्री दिवं मे गता।।३।।

तादृशीं तातभक्तिं कथं संस्तुवे।
यन्निदेशात्सुतेन स्वमाता हता।।४।।

त्वन्मतिर्हा विधे! स्यात्कथं सम्मता।
यन्मयूरा भुजङ्गाशना निर्मिताः।।५।।

सोऽस्तु वृद्धो युवा, सस्मरो वाऽस्मरः।
यत्प्रियाऽऽसीदुमा तद्भवायाऽर्पिता।।६।।

विश्वबन्धुत्वबीजं ध्रुवं रक्षितम्।
भारते यावदास्ते गवी संस्कृता।।७।।

कच्चराऽन्वेषिणं बालमन्वीक्षते।
वाहनात् कुक्कुरो हा हता दीनता।।८।।

नो ऽभिराजं तथाऽन्यद् दुनोति ध्रुवम्।
जम्बुकानां यथा व्याजपारीन्द्रता।।९।।

रात्रौ : १०.४८ वादने
संस्थानातिथिकक्षे, १०.०६.२०१२ ई०

•

काजलो की कोठरी में मत जाना मित्र! उसकी एक लीक तो लग ही जायेगी।।१।।

वह गली सबकी जानी-पहचानी है। एक बार भी उसमें घुसे तो (समझो) नाक कटी।।२।।

अचानक ही बचपन से आ गया बुढ़ौती में, जिस क्षण मेरी माँ ने आँखे मूँद ली।।३।।

उस प्रकार की **पितृभक्ति** की प्रशंसा कैसे करूँ कि जिस (पिता) के सङ्केत से, बेटे द्वारा माँ का मस्तक काट दिया गया।।४।।

हे विधाता! तुम्हारी समझ को मैं सम्मत (उचित) कैसे मान लूँ जो तुमने मयूरों को सर्पभक्षी बना दिया।।५।।

वह चाहे बूढ़ा हो या जवान! रति-समर्थ हो अथवा असमर्थ! जिसकी प्रिया थी उमा, अपने वल्लभ पर पूर्णतः अर्पिता।।६।।

भारत राष्ट्र में जब तक संस्कृत-भाषा सुरक्षित है (तब तक) विश्वबन्धुता का बीज निश्चय ही सुरक्षित है।।७।।

कार मैं बैठा कुत्ता, कूड़े-कचरे में (खाना) खोज-बीन करते बच्चे को देख रहा है। आह! हत्या हो गई दीनता की।।८।।

सच मानो, कोई और बात अभिराज को (उतना) विपन्न नहीं बनाती, जितना कि श्रृगालों का, बहाना लेकर शेर जैसा आचरण करना।।९।।

●

ते कृतज्ञोऽहम्

हतवानसिच्छलेन ते कृतज्ञोऽहम्।
जितवानसि भ्रमेण ते कृतज्ञोऽहम्।।१।।

लालाटिकोऽस्मि निर्निमेषस्ते।
भृतवानसि क्षुधैव ते कृतज्ञोऽहम्।।२।।

अद्य वा श्वो भवेद् ध्रुवं मरणम्।
तत्त्वयैवाहितं छुरेण ते कृतज्ञोऽहम्।।३।।

किन्नु कथ्येत ते ऽनुचर्याणाम्।
विषं निपायितं रसेन ते कृतज्ञोऽहम्।।४।।

पतङ्गकल्पजनं प्रापयन् खमुत्तुङ्गम्।
छिनत्सि तं नु दोरकेण ते कृतज्ञोऽहम्।।५।।

उपर्यहो नु लहर्योऽन्तरे दहद्वडवा।
सिन्धुतामेषि हृदा केन, ते कृतज्ञोऽहम्।।६।।

नो ऽविता नन्दिनी न चापि ते गतं शौर्यम्।
अलं महीप ते श्रमेण ते कृतज्ञोऽहम्।।७।।

आवयोर्भिन्नरुचिर्भिन्नगुणो भिन्नमतम्।
हन्त बन्धुत्वमक्रमेण, ते कृतज्ञोऽहम्।।८।।

नीलगगन होटल, जनकपुरी
प्रातर्नववादने, १६.१०.२०१२ ई०

●

छल से मारा मुझे, तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। भ्रम पैदा करके विजयी बन गए, तुम्हारा कृतज्ञ हूँ मैं।।१।।

बिना पलक झपकाए (टकटकी बाँधे) तुम्हारा मुँह ताकता रहा हूँ (तथापि) मुझे भूखा ही रखा! तुम्हारा कृतज्ञ हूँ मैं।।२।।

आज या कल, मरना तो ध्रुव है। वह काम तुम्हीं ने कर दिया छुरे से। तुम्हारा कृतज्ञ हूँ मैं।।३।।

तुम्हारी अनुचर्याओं (व्यवहारों) की क्या प्रशंसा की जाय? (मीठे) रस के साथ ज़हर पिला दिया! कृतज्ञ हूँ तुम्हारा मैं।।४।।

पतङ्ग-सरीखे (अपने) गुणों को ऊँचे आसमान तक पहुँचा कर, उसे बीच डोरी से काट दिया? कृतज्ञ हूँ, तुम्हारा मैं।।५।।

वाह क्या कहना? ऊपर-ऊपर तो हैं लहरें और भीतर है दहकती वाडवाग्नि! किस कलेजे से समुद्र बने बैठे हो? कृतज्ञ हूँ तुम्हरा मैं।।६।।

न नन्दिनी गाय की रक्षा की, न ही अपना पराक्रम नष्ट किया (क्योंकि शेर को मारने के लिये उमगे तो?) हे राजन्! (दिलीप) हो चुका तुम्हारा श्रम! तुम्हारा कृतज्ञ हूँ मैं।।७।।

हम दोनों की रुचियाँ भिन्न हैं, गुण भिन्न हैं, मत भी भिन्न हैं। हन्त! फिर भी बिना सामञ्जस्य के ही, हममें भाईचारा है। कृतज्ञ हूँ तुम्हारा मैं।।८।।

•

दामिनी दलिता

म्रियन्ते प्रावृषि प्रायो जनाः किल दामिनीपातात्।
विधे! किमिदं नु सञ्जातं खलैर्यद् दामिनी दलिता।।१।।

प्रसू रोदिति, पिता रोदिति, गृहे गृहिणी न किं रोदिति।
ध्रुवं तिष्ठन्ति बन्धो! मन्दिरेऽपि च देवता रुदिताः।।२।।

पृथिव्या यत्र मातृत्वं प्रतिष्ठितमार्षसंस्कृत्या।
अहो राष्ट्रे नु तस्मिन् भारते किं साम्प्रतं भविता।।३।।

कलिकया जायते पुष्पं, फलं पुष्पाच्च समुदीते।
क्व पुष्पं क्व च फलं यदि सैव कलिकाऽनवसरं गलिता।।४।।

न किं षट्सारमेयैर्निर्दयं निहता कुरङ्गी सा।
पितुर्मातुर्नयनयोः पुत्तली दयितस्य वा वनिता।।५।।

भगिन्या स्वीयया सार्धं तदेव नृशंसमाचरितुम्।
पराननुमंस्यते किं वा स जाल्मो योऽत्र घातयिता।।६।।

वरं पशवो न नग्नामपि सखीं ये जातु वरयन्ते।
अहो! प्रेमोपनिषदं जानते ते आत्मसंयमिताः।।७।।

स्वयं घनसारकल्पा दामिनी सा स्वर्गमारुढा।
मृता जीवन्ति जगतो दुष्कलङ्का राक्षसाः पतिताः।।८।।

महद्दुःखान्तनाट्यमहो नु जातं हायनं चैतत्।
हृता भूयोऽपि वैदेही द्रुपदजा कौरवैश्छलिता।।९।।

हृदिस्थं दानवं त्वरया बहिष्कुरु, जीवनेच्छा चेत्।
क्वचिन्नो स्यात्तवात्मीयाऽपि काचित्तेन पद्दलिता।।१०।।

नीलगगने रात्रि : ९.३५ वादने
३०.१२.२०१२ ई०

•

वर्षा के दिनों में प्रायः **दामिनी** (बिजली) के गिरने से लोग-बाग मरते हैं। परन्तु विधाता! यह क्या हो गया कि कमीनों ने 'दामिनी' को ही बरबाद कर दिया।।१।।

माँ रो रही है, बाप रो रहा है। घर में हर गृहिणी क्या नहीं रो रही है? मेरे भाई! निश्चित रूप से मन्दिर में देवता भी (इस घटना से) रो रहे हैं।।२।।

जिस भारत में आर्ष-संस्कृति के द्वारा **पृथ्वी का भी मातृत्व** प्रतिष्ठित किया गया **(माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः-अथर्ववेद)** आश्चर्य है कि उस भारत राष्ट्र में अब क्या होने को है।।३।।

कली से पैदा होता है फूल और फूल से उत्पन्न होता है फल। परन्तु यदि वह **कली** ही अनवसर नष्ट कर दी गई तो कहाँ रहा (वह) फूल और फल? ।।४।।

क्या (उन) छह कुत्तो के द्वारा वह हिरनी नृशंसतापूर्वक मार नहीं डाली गई जो (अपने) माता-पिता की आँखों की पुतली थी, अथवा (भविष्य में प्राप्त होने वाले) पति की पत्नी थी।।५।।

जिस जालिम ने इइ घटना में यह महापाप किया, क्या वह अपनी बहन के साथ वही नृशंस व्यवहार करने के लिए, दूसरों को अनुमति देगा? ।।६।।

पशु भी (हमसे कहीं) अच्छे हैं जो (सर्वथा) नग्न रहती हुई भी अपनी सहचरी को, कभी भी (उसकी इच्छा न रहने पर) भोग नहीं करते। कितना आश्चर्य है कि आत्म-संयम में बँधे वे ही **प्रेम के उपनिषत् तत्त्व** को जानते हैं (क्षुद्र मनुष्य नहीं)।।७।।

कर्पूर-सरीखी वह **दामिनी** तो स्वयं स्वर्गलोक चली गई, परन्तु निन्द्य कलङ्क वाले वे संसार के पतित राक्षस, निष्प्राण होते हुए भी जी रहे हैं।।८।।

हा प्रभो! यह वर्ष तो (२०१२ ई०) अतिशय दुःखान्तनाटक ही सिद्ध हुआ। एक बार पुनः **वैदेही** अपहृत हुई और **द्रौपदी** कौरवों द्वारा छली गई।।९।।

यदि जीने की आकांक्षा है तो हृदय में बैठे दानवों को शीघ्रातिशीघ्र बाहर निकालो। तुम्हारी अपनी ही कोई (बेटी या बहन) उस दानव से पद-दलित न हो जाय।।१०।।

●

किन्न मन्दुरायते?

हन्त देवमन्दिरं किन्न **मन्दुरायते**।
सुस्थिरं शिलाऽजिरं किन्न बन्धुरायते।।१।।

घोषयद्धि भारतं विश्वविश्वनीडताम्।
भूमिनन्दिनीहरः किन्न **रावणायते**।।२।।

सञ्चरन्ति निर्भया; कबन्धदूषणौ खराः।
हर्म्यवाटिकाऽप्यहो किन्न **दण्डकायते**।।३।।

क्षुद्रहृत्पुरन्दरैर्हा पतिव्रताच्च्युता।
काऽपि गौतमप्रिया साम्प्रतं **शिलायते**।।४।।

नैव लोकतो भयं नाऽपि शोकतो भयम्।
अद्य मानवाऽधमो दृप्त**दानवायते**।।५।।

बन्धने वृषाः खरा वन्दिताश्च धेनवः।
मुक्तकुक्कुरैर्गृहं किन्तु **पितृवनायते**।।६।।

वीतवत्सरस्य किं संस्मरान्यहं सुखम्?
केवला ऽपि दामिनी **भल्लकण्टकायते**।।७।।

चन्दनेषु वेष्टिता भीषणा भुजङ्गमाः।
क्षारधर्षिता मही **काममूषरायते**।।८।।

हन्त संस्कृतं विना सर्वमस्त्स्यसंस्कृतम्।
भारतन्नु दिविषदां रक्षसां **गृहायते**।।९।।

नीलगमने, ९ वादने
१.०१.२०१३ ई०

•

हाय रे! क्या देवमन्दिर घुड़साल नहीं लगने लगा है? सुस्थिर (चिकनी) शिलाओं से बना आँगन क्या ऊबड़-खाबड़ नहीं लगने लगा है? ।।१।।

अपने को सम्पूर्ण विश्व का नीड़ घोषित करता हुआ भारत क्या भूमिनन्दिनी (सीता) का अपहरण करने वाला **रावण** नहीं लगने लगा है।।२।।

कबन्ध, दूषर और खर (जैसे राक्षस) निर्भय घूमने लगे हैं। क्या अपने घर की बगीची भी **दण्डकवन** नहीं प्रतीत होने लगी है? ।।३।।

क्षुद्रहृदय वाले पुरन्दरों (इन्द्रों) द्वारा पातिव्रत से च्युत की गई कोई गौतमप्रिया (अहल्या) सम्प्रति शिला-सरीखी बन गई है।।४।।

नहीं रहा समाज से भय और नहीं रहा, **पश्चात्ताप** से भय! आज अधम मनुष्य दृप्तदानव प्रतीत होने लगा है।।५।।

बैल, गधे तथा वन्दनीय गायें–सब बन्धन में हैं। परन्तु बेलगाम घूमते कुत्तों के कारण घर भी श्मशान सा लगने लगा है।।६।।

गुजरे हुए साल का कौन-सा सुख याद करूँ? अकेली **दामिनी** का ही प्रकरण भाला एवं काँटा जैसा लगने लगा है।।७।।

चन्दन में लिपट गये हैं भीषण भुजङ्गम! क्षार से घर्षित धरती ही भरपूर ऊषर लगने लगी है।।८।।

ओफ् संस्कृत के अभाव में (इस राष्ट्र में) सब कुछ **अ-संस्कृत** ही है। देवताओं की (लीला) भूमि भारत राक्षसों का घर लगने लगी है।।९।।

त्वमेवासि बन्धो!

यमन्विष्यतो जीवनम्मे व्यतीतम्।
स सर्वोत्तमस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।१।।

त्रिधा कौलपत्येन योऽलङ्कृतोऽभूत्।
स विद्वत्तमस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।२।।

न सत्यं मनोवाक्कृतैर्येन युक्तम्।
स सत्यव्रतस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।३।।

निरस्तद्रुदेशे य एरण्डकल्पः।
वटस्सोऽक्षतस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।४।।

अपूर्वां श्रियं रूपसाम्येन बिभ्रत्।
स हंसावृतस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।५।।

स्वहस्तार्पितैः पुष्पमाल्यैः समञ्चन्।
स पद्माङ्कितस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।६।।

समुद्घोषयन् जीवितां किंवदन्तीम्।
स अर्हत्तमस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।७।।

स्वनिष्ठेष्वनार्यं चरन्नेव नित्यम्।
स आर्योत्तमस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।८।।

युवस्पर्धितां दर्शयन् सप्रयत्नम्।
स मुग्धोत्तमस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।९।।

स्फुरत्कङ्कणं व्याघ्रहस्तात्प्रगृह्णन्।
स लुब्धोत्तमस्त्वं, त्वमेवासि बन्धो।।१०।।

शिमला, शाम ४ बजे
१८.०१.२०१३ ई०

•

जिसको खोजते ही खोजते मेरा जीवन सिरा गया मेरे भाई! वह सर्वोत्तम व्यक्ति तुम हो, तुम्हीं हो।।१।।

जो तीन बार (टर्म) कुलपति-पद से अलंकृत हुआ, मेरे भाई! वह श्रेष्ठतम विद्वान् तुम्हीं हो।।२।।

मन, वाणी तथा कर्म-किसी भी रूप में **सत्य** जिसके साथ जुड़ा नहीं है, वह **सत्यव्रत** तुम्हीं हो मेरे भाई।।३।।

पेड़-पौधों से नहरूम इलाके में जो एरण्ड (रेड़) के समान (प्रतिष्ठित) है, मेरे भाई! वह **अक्षयवट** तुम्हीं हो।।४।।

रूप-साम्य से विलक्षण सुषमा को धारण करते हुए, हंसत्व से आवृत्त (राजहंस प्रतीत होने वाले) वह (बगुला भगत) तुम्हीं हो मेरे भाई।।५।।

अपने ही हाथों अर्पित किये गये पुष्पमाल्यों से शोभा प्राप्त करने वाले वह पद्माङ्कित (पद्मश्री, पद्मभूषण) तुम्हीं हो मेरे भाई।।६।।

अपने को **जीवित किं वदन्ती** (Living Legend) उद्घोषित करने वाले वह सर्वाधिक योग्य व्यक्ति (अहोपुरुष) तुम्हीं हो मेरे भाई।।७।।

अपने प्रति श्रद्धा-भक्ति रखने वालों के प्रति निरन्तर अभद्र आचरण करने वाले वह **आर्योत्तम** तुम्हीं हो मेरे भाई।।८।।

पूर्ण प्रयत्न के साथ युवाजनों के (भी) साथ अपनी प्रतिस्पर्धिता प्रदर्शित करते हुए वह **महामुग्ध** भी तुम्हीं हो मेरे भाई।।९।।

बाघ के हाथों से चमचमाते सुवर्ण-कङ्कण को ग्रहण करते वह महालोभी (ब्राह्मण) तुम्हीं हो मेरे भाई।।१०।।

●

कीदृशाः कीदृशाः

मूर्च्छिता युद्धभूमिं विलोक्यैव ये।
सन्ति **लोके भटाः** कीदृशाः कीदृशाः।।१।।

अक्षमा हन्तुमेकं शशं वाऽप्यहो।
सन्ति **बिभ्रत्सटाः** कीदृशाः कीदृशाः।।२।।

ये न जानन्ति सीमां, महासिन्धव-
स्ते **विनश्यत्तटाः** कीदृशाः कीदृशाः।।३।।

रावहम्मीरकल्पा जयन्त्यद्य ते।
भूरि **शौर्यद्रुठाः** कीदृशाः कीदृशाः।।४।।

नो विजानन्त्युदात्तादिकोच्चारणं।
ते नु **गायत्कठाः** कीदृशाः कीदृशाः।।५।।

नैव दीप्यद्ध्वनौ हन्त येषां रति-
स्तेऽभिधामम्मटाः कीदृशाः कीदृशाः।।६।।

प्रद्रुताः संविधायोपलैर्वर्षणम्।
अम्बुदा **दुर्घटाः** कीदृशाः कीदृशाः।।७।।

सूतवन्तो महर्षिं विनैव प्रसूम्।
ते नु **दिव्या घटाः** कीदृशाः कीदृशाः।।८।।

नामवन्तो बभूवुर्विशेषान्नु ये।
ते **बुधा उद्भटाः** कीदृशाः कीदृशाः।।९।।

शिमला, शाम ५.१९ बजे
१८.०२.२०१३ ई०

•

संसार में कैसे-कैसे बहादुर लोग हैं कि जो समरभूमि को देखते ही मूर्छित हो उठते हैं।।१।।

आश्चर्य है! एक खरगोश को भी मार पाने में जो समर्थ नहीं है ऐसी धनी अयाल वाले कैसे-कैसे बबर शेर हैं।।२।।

जो अपनी सीमा को भी नहीं जानते ऐसे, तटों को तोड़ने वाले कैसे-कैसे महासमुद्र हैं।।३।।

आज भी **राव हम्मीर**-सरीखों की जय जयकार गूँज रही है (कि) अपने हठ पर मर मिटने वाले कैसे-कैसे लोग (भारत में) हुए।।४।।

जो **उदात्त** आदि (स्वरों का) उच्चारण तक करना नहीं जानते ऐसे कैसे-कैसे हैं **कठ-शाखा** के गायक।।५।।

(कविता के) ध्वनि-मार्ग में जिनकी आस्था नहीं है, कैसे-कैसे हैं वे **अभिद्या के पक्षधर मम्मट** लोग।।६।।

पत्थर बरसा कर भाग खड़े हुए। कैसे-कैसे हैं अचानक आ धमकने वाले बादल।।७।।

बिना (जन्मदात्री) माँ के ही (अगस्त्य-सरीखे) ऋषियों को पैदा कर दिया, कैसे-कैसे थे (भारत में) वे दिव्य घट।।८।।

विशेषण से जो **संज्ञा** बन गये, कैसे-कैसे थे वे **उद्भट** विद्वान्।।९।।

●

अयं वीक्षते

को नु लाभः प्रतोल्या तया सज्जनाः।
यत्र गोभिस्समं सूकराः शेरते।।१।।

का नु निष्ठाऽऽम्रपालीरतेरुच्यताम्।
या हि तातं तनूजं समं सेवते।।२।।

शाम्भवीसत्कृपायाः किमालम्बनम्।
दानवैर्या च देवैः सुखं लभ्यते।।३।।

न क्षुधे, प्रत्युत स्वर्णमृगतृष्णया।
आदिनं भिक्षुकोऽयं चिरं भिक्षते।।४।।

घोटकोऽयं प्रकृत्यैव दुर्मर्षणः।
मन्दुरायां सृतौ वा सदा ह्रेषते।।५।।

पारवश्यस्य दृष्टं तदेतत्फलम्।
पच्यते वह्निना, हर्म्यमपि दह्यते।।६।।

कीदृशी तत्समक्षं मदभ्यर्थना।
बिम्बवन्मे सपत्नो यमालम्बते।।७।।

नास्मि दीनो, न वा दीनबन्धुर्भवान्।
एष सम्बन्ध आवां समुद्वेजते।।८।।

किं समाप्तो विपत्तेश्चयस्तावकः।
दुर्विधे! त्वां जनोऽद्याप्ययं वीक्षते।।९।।

अपराह्णे ३.३० बजे
आवासः, इलाहाबादम् ५.०२.२०१३ ई०

•

सज्जनों! उस पौरी से भला क्या फायदा जिसमें गायों के साथ सुअर भी सोया करते हैं।।१।।

आप ही बताएँ, **आम्रपाली** की प्रीति की क्या निष्ठा है जो कि पिता (बिम्बसार) तथा पुत्र (अजातशत्रु) की समान रूप से सेवा करती है।।२।।

देवाधिदेव शम्भु की उस कृपा का क्या भरोसा किया जाय जो दानवों तथा देवों को समान रूप से उपलब्ध है (यानी आप तथा आपके शत्रु–दोनों को वह समान रूप से प्राप्त है)।।३।।

भूख मिटाने के लिए नहीं प्रत्युत स्वर्ण-मृग की तृष्णा से (अधिकाधिक पैसा बटोरने के लिए) यह भिखारी, सारा दिन, शाम तक भीख माँगता रहता है।।४।।

यह घोड़ा स्वभाव से ही असहनशील है। चाहे घुड़साल में रहे चाहे यात्रापथ में। हिनहिनाता ही रहता है (निरर्थक)।।५।।

'परवश' होने का यह फल मैंने देखा है कि जिस आग से खाना पकाया जाता है उसी से (किसी का) घर भी जला दिया जाता है (क्योंकि अग्नि परवश है)।।६।।

मेरा (जाती) दुश्मन छाया की तरह जिसके पीछे लगा रहता है, उसके सामने भला मेरी कैसी अभ्यर्थना।।७।।

न ही मैं **दीन** हूँ, न ही आप हैं, **दीनबन्धु!** हम दोनों का यह सम्बन्ध उद्वेग पैदा करता है।।८।।

क्या तुम्हारी विपत्तियों का जोर समाप्त हो गया? दारिद्र्य महाराज! यह व्यक्ति (राजेन्द्र मिश्र) तो अभी भी तुम्हें ही देख रहा है (कि अपना रहा-सहा जोर आजमा लो)।।९।।

•

मां नु सर्वंसहम्

अग्रहारे नु यस्मिन्मया हिण्डितम्।
हन्त, तत्रैव कोणे तवाऽसीद्गृहम्।।१।।

स्वोद्यमं सन्त्यजेयं कथं जीवने?
भानुमुद्यन्तमीक्ष्योषसि प्रत्यहम्।।२।।

दुर्वहोऽहं नु कामं कृते संसृतेः।
मत्कृते किन्तु नेदं जगद्दुर्वहम्।।३।।

वह्निकल्पो ज्वलिष्याम्यहं जीवने।
तेन तेने विधिर्मां नु सर्वंसहम्।।४।।

कं नु याचे समे भिक्षुका मत्पुरः।
पूरये ऽहं स्वयं याचिनामाग्रहम्।।५।।

मच्चरित्रैर्न कोऽपि प्रसादङ्गतः।
एकलः केवलं स्वात्ममुग्धोऽस्म्यहम्।।६।।

तुङ्गतां भूधराणामुदीक्षेत कः?
को न कुर्याद् द्रुमाणां वने सङ्ग्रहम्।।७।।

नित्यकालप्रवाहे विवादः कथम्।
दण्डिनं प्रागभवं ब्रूहि वा **भामहम्**।।८।।

ये ऽभिराजस्य काव्ये निमग्नाः सदा।
मन्वते ते क्व वा निग्रहाऽनुग्रहम्।।९।।

सन्ध्या : ६.३० वादने
आवासः, इलाहाबादम्, ५.०२.२०१३ ई०

•

जिस गाँव की मैं धूल छानता रहा। हाय! उसी के एक कोने में तुम्हारा घर था।।१।।

प्रतिदिन उषावेला में सूर्य को उदित होता हुआ देखकर भला मैं जीवन में अपना उद्यम (पुरुषार्थ) कैसे छोड़ दूँ? ।।२।।

माना कि (अब) मैं संसार के लिये 'दुर्वह' हो चला हूँ, परन्तु मेरे लिये यह संसार (कथमपि) दुर्वह नहीं है।।३।।

आग के समान (ही) मैं जीवन भर जलता रहूँगा। तभी तो विधाता ने मुझे **सर्वंसह** बनाया है।।४।।

किससे माँगू? मेरे सामने सब भिखारी ही तो हैं? मैं स्वयं इन भिखारियों की अपेक्षाओं को पूर्ण करूँगा।।५।।

मेरे चरित्रों (आचरणों) से कोई भी प्रसादभाव को नहीं प्राप्त कर सका। एकदम निपट अकेला हूँ और **आत्ममुग्ध!** (स्वयं अपने से प्रसन्न)।।६।।

पर्वतों की ऊँचाई को कौन देख सकता है? और वन में पेड़ों की गिनती भी कौन कर सका है।।७।।

(इस) नित्य कालप्रवाह में विवाद कैसा? अरे (आचार्य) दण्डी को पहले पैदा हुआ बताओं या भामह को। (क्या फर्क पड़ता है?) ।।८।।

जो (सहृदय) अभिराज के काव्य-रस में सदा डूबे रहते हैं वे कहाँ मानते हैं निग्रह और अनुग्रह? (वे पुरुषार्थवादी हैं)।।९।।

●

कोऽपि कथयेत्!

यात्रापथे समाप्ते, क्व नु यामि, कोऽपि कथयेत्।
लक्ष्ये श्रमादवाप्ते क्व भवामि, कोऽपि गमयेत्।।१।।

देवैरपि प्रकटितोऽकिञ्चित्करत्वभावः।
विपदां निवारणे ऽन्यं कमुपैमि, कोऽपि शमयेत्।।२।।

दृष्ट्वा छलं महिष्या जातो ऽस्म्यहं विरक्तः।
कुर्वे कुलालजायाः किं, कोऽप्यहो ऽवगमयेत्।।३।।

दुश्शासनोऽपि कर्षन् सम्मूच्छ्र्य यां विनिपतेत्।
मन्नियतियाज्ञसेन्याः शाटीं नु कः प्रगुणयेत्।।४।।

पाथोनिधेस्समधिका जाता व्यथा गभीरा।
स हरिस्तिमिङ्गिलस्तामेकोऽधुना विगणयेत्।।५।।

जीवनमहारणेऽस्मिन् युध्यन्नजेय एव।
विरमाम्यहं, समाजो मम पौरुषं सुदृढयेत्।।६।।

ननु शातिता मयाऽन्ये ऽन्यैश्शातितोऽस्म्यहं वा?
गूढं न्विदं रहस्यं चतुराननो विशदयेत्।।७।।

ग्रहमण्डले स्थितं मां द्रष्टुं समे लषन्ते।
भूकर्दमो ऽस्म्यहं भो; हेतुं नु को नियमयेत्।।८।।

चित्तं नलागिरिर्मे स मदोत्कटो गजेन्द्रः।
सङ्गीतकातरं तं को वीणया प्रमदयेत्।।९।।

अपराह्णे : ३.३० वादने
आवासः, इलाहाबादम्, ६.०२.२०१३ ई०

•

यात्रापथ के समाप्त हो जाने पर, कोई बताये तो सही! मैं कहाँ जाऊँ? परिश्रम करके लक्ष्य तो प्राप्त हो गया। अब मैं कहाँ रहूँ। कोई बताये तो सही।।१।।

देवताओं ने भी अन्ततः प्रकट कर दिया कि वे कुछ भी (सहायता) कर पाने में असमर्थ हैं। (अब) विपदाओं के निवारणार्थ, दूसरे किसके पास जाऊँ? कोई बताये तो।।२।।

राजरानी का छल देख कर मैं (भर्तृहरि) विरक्त तो हो उठा हूँ। परन्तु (स्वयं पर मर मिटने वाली) कुम्भकार-कन्या का क्या करूँ? कोई बताए तो सही।।३।।

जिसको खींचते-खींचते दुश्शासन भी मूर्च्छित होकर धराशायी हो जाय, अपनी **भाग्यरूपी द्रौपदी** की उस साड़ी का क्या करूँ? कौन उसे बढ़ाए।।४।।

(मेरी) नीड़ा तो समुद्र से भी कहीं अधिक गहरी हो चली है। अब उस गहराई को तो ह्वेलमत्स्य-सरीखे एकमात्र **श्री हरि** ही समझ सकते हैं।।५।।

इस जीवनरूपी महासमर में युद्ध करता हुआ (यद्यपि) मैं अजेय ही रहा (परन्तु) अब विराम ले रहा हूँ। समाज ही मेरे पौरुष को सुदृढ़ बनाए।।६।।

सचमुच अन्य लोग ही मेरे द्वारा सताए गए अथवा मैं ही औरों द्वारा सताया गया हूँ। इस गूढ़ (अनिर्णीत) रहस्य को चतुरानन (विधाता) ही प्रकाशित करें।।७।।

सब लोगों की आकांक्षा है मुझे ग्रह-मण्डल के बीच विराजमान देखने की। परन्तु (अभी तो) मैं जमीन के कीचड़ में हूँ। इसके कारण का नियमन कौन करे।।८।।

मेरा मन है वह मदमत्त हाथी–**नलागिरि**? सङ्गीत सुनने को कातर उसे कौन (उदयन) वीणावादन से वशीभूत करे।।९।।

●

दृश्येऽधुनाऽवदातः

अभिनन्दने स्वकेऽहं ननु जर्जरोऽस्मि जातः।
न तथापि काऽपि चिन्ता, दृश्येऽधुनाऽवदातः।।१।।

दत्तेऽपि भूरिवृत्ते, केनाऽपि नो प्रशस्तिः।
लिखिता, ततो मयैव प्रकटीकृतः प्रतापः।।२।।

अन्तर्निविश्य सोऽहं वैतालवच्छवेषु।
न्यपतं निबन्धकाव्यस्मरणादिकप्रपातः।।३।।

एकोऽस्म्यहं बहुस्स्यामिति यच्छ्रुतिर्बभाषे।
स्वीयेऽभिनन्दनेऽसौ भावः स्फुटो नु जातः।।४।।

अहमेव काव्यगेयो मदुपज्ञमेव गीतम्।
रिपुसूदनैर्विशेषैरहमेव सुप्रभातः।।५।।

सम्पुटितपाणियुग्मेनाऽमन्त्रिता वयस्याः।
तैः कथमहं कृतार्थो, जाने न भिन्नगात्रः।।६।।

आरात्रिजागराभिः व्यलिखं स्वयं तदाख्याः।
कृतवांश्च सर्वहस्ते, निगृहीतसन्निपातः।।७।।

प्रादर्शयं प्रभाते प्रतिवेशिनस्सलज्जम्।
अभिनीय धीरशान्तं चरितं मनोनिशातः।।८।।

ननु धिक्करोति यो मां, तमहं न वेद्मि कोऽसौ?
द्रुह्यत्ययं कथम्मे आत्मा ममाङ्गजातः।।९।।

सन्ध्या ४.४५ वादने
आवासः, इलाहाबादम्, ६.०२.२०१३ ई०

अपने अभिनन्दन से तो मैं आजिज़ आ गया हूँ। फिर भी कोई चिन्ता की बात नहीं। अब (थोड़ा) साफ-सुथरा तो दीखने लगा हूँ।।१।।

अपने विषय में (अपने ही हाथों) प्रभूत सामग्री देने पर भी किसी ने (मेरी) प्रशस्ति नहीं लिखी। सो मैंने ही (अपना) प्रताप प्रकट किया।।२।।

मुर्दों में प्रविष्ट हुए वैताल की तरह मैं ही दूसरों के (छद्म) नामों में प्रविष्ट होकर (आत्म-विषयक) निबन्ध, कविता तथा संस्मरणादि का प्रपात बनकर लौटा।।३।।

श्रुतियों में जो (ब्रह्मवाक्य) मिलता है न **मैं अकेला बहुत हो जाऊँ,** तो अपने **अभिनन्दनग्रन्थ** में वही सत्य कारगर सिद्ध हुआ (अपने आप पचीसो नामों से पृथक्-पृथक् लिखना पड़ा)।।४।।

कविताओं द्वारा गेय (प्रशंसनीय) भी मैं ही था। गीत भी मेरे ही लिखे हुए थे। शत्रुसंहारक विशेषणों द्वारा मैं ही देदीप्यमान बनाया गया था।।५।।

दोनों हाथ जोड़-जोड़कर मित्रों को (समारोह में) आमन्त्रित किया था। उनके द्वारा मैं कैसे कृतार्थ किया गया, शिथिल-गात्र मैं कुछ नहीं जानता।।६।।

सारी रात जगकर मैंने स्वयं उस (अभिनन्दन) समारोह की रिपोर्ट लिखी। सन्निपात से जकड़ा हुआ सा मैंने ही उसे सारे संवाददाताओं के हाथों में पहुँचाया भी।।७।।

सवेरा होने पर उस रिपोर्ट को लजाते हुए पड़ोसियों को दिखाया भी, धीर-प्रशान्त चरित का अभिनय करते हुए (परन्तु) मन तो व्यग्र है।।८।।

सचमुच है कोई जो मुझे (यह सब करने के लिये) धिक्कार रहा है। मैं नहीं जानता उसे, वह कौन है? वह मुझसे द्रोह क्यों करता है? वह है मेरा ही अज्ञात आत्मा।।९।।

•

रौरवद्वारमुद्घाटितम्

पापमार्गे यदारभ्य पादं धृतं।
उन्नतिद्वारमुच्चैस्ततोऽपावृतम् ।।१।।

देवतात्माऽऽगतो मत्समीपं स्वयं।
तेन सार्धं विभुत्वञ्च तस्यागतम्।।२।।

वीजनं तालवृन्तैरकार्षुर्मुदा।
मालया मन्दवाताः श्रमाम्भो हृतम्।।३।।

गातुमारेभिरे द्वारमाकन्दके।
प्रीतिमत्ताः पिका बर्हिभिर्नर्तितम्।।४।।

मद्गृहप्रान्तरे दुग्धदध्यापगाः।
वेगमय्योऽवहन् दुर्विधत्वं गतम्।।५।।

याचकाद्धन्त दाताऽभवं द्रागहं।
को नु वेत्तुं क्षमः, केन किं कारितम्।।६।।

मद्भयाद् भज्जिताः पश्य सीमाः स्वयं।
शंसया कर्णयोर्मेऽमृतं सारितम्।।७।।

मेनका मे न का? कोर्वशी नो वशे?
सन्ततं कं न वाऽऽरोहमैरावतम्।।८।।

अश्मचित्तेन धातस्त्वया किं कृतं।
स्वर्गसौख्यं चिरायुष्कतां नो गतम्।।९।।

उन्नतिद्वारमेतन्निरुद्धं कथं।
मत्कृते रौरवद्वारमुद्घाटितम्।।१०।।

रात्रौ ११.१० वादने
आवासः, इलाहाबादम्, ६.०२.२०१३ ई०

पाप के मार्ग में जबसे (मैंने) पाँव रखा तभी से उच्चकोटिक उन्नति का द्वार खुल गया (मेरे लिए)।।१।।

देवताओं की आत्मा स्वयं मेरे समीप आ खड़ी हुई और उसी के साथ उसका विभुत्व भी आ धमका।।२।।

मलय-पर्वत से आती मन्द हवाएँ तालवृन्तों से (मानो) हवा करने लगीं, सारा पसीना सूख गया।।३।।

द्वार-स्थित आम्रवृक्ष पर प्रेम में मतवाले कोकिल गाने लगे और मयूरों ने नाचना शुरू कर दिया।।४।।

मेरे घर की परिधि में दूध और दही की नदियाँ वेग के साथ बहने लगी (मेरी) दरिद्रता छू-मन्तर हो उठी।।५।।

पलक झँपकाते ही मैं भिखारी से दाता बन गया, (यह रहस्य) कौन समझने में समर्थ है कि किसने क्या करा दिया?।।६।।

देखो न, मेरे भय से सीमाएँ स्वयं भग्न हो गईं। (मेरी) प्रशंसाओं ने कानों में अमृत उड़ेल दिया।।७।।

कौन सी **मेनका** मेरी नहीं बन गई? कौन **उर्वशी** मेरे वश में नहीं हो गई? निरन्तर ही किस **ऐरावत** पर (मैं) सवारी नहीं करने लगा।।८।।

हे विधाता! संगदिल तुमने यह क्या कर दिया कि मेरा वह स्वर्गोपम सौख्य चिरायुष्क नहीं बनने दिया।।९।।

मेरी उन्नति का यह द्वार रोक क्यों दिया? मेरे लिये **रौरव** नरक का द्वार उद्घाटित कर दिया? ।।१०।।

●

जितं मयका!

प्रणाली पूतिजलवाहिन्यहं वाटी वराहाणाम्।
सदा शौचार्थिनां काम्या, जितं मयका जितं मयका।।१।।

न मय्यम्भोरुहं फुल्लं विजह्युर्नैव कादम्बाः।
अहं कृमिकुम्भिकाधन्या, जितम्मयका जितम्मयका।।२।।

गृहीतं पाणियुगलं सप्तपद्या नो मया शपथैः।
कुशलिनी रूपजीवाऽहं जितम्मयका जितम्मयका।।३।।

वरं कौमारहरमपहाय दयितं वृतवती सभिकम्।
नयाम्यभि धर्मसहचरणं जितम्मयका जितम्मयका।।४।।

अहो न्यासीकृताः प्राणाः सुकृतिना येन तं सुप्तम्।
नृशंसा हतवती साहं जितम्मयका जितम्मयका।।५।।

समाजे सुप्रतिष्ठाऽहं मुकुरकल्पे ऽथ धूसरिते।
अहोऽसौ क्रन्दति व्यथितो जितम्मयका जितम्मयका।।६।।

तिरोहितरौरवं पश्येन्नु को मयि किल्विषाक्रान्तम्।
समे प्रत्यक्षविश्वस्ता जितम्मयका जितम्मयका।।७।।

त्वमसि पातिव्रते धुर्याऽप्यहं भोक्तृव्रते दक्षा।
निबद्धा त्वं विमुक्ताऽहं जितम्मयका।।८।।

किमिति पुण्यं किमिति पापं गतिर्वा काऽनयोर्भविता?
न चास्मिन् श्रद्दधे किञ्चिज्जितं मयका जितम्मयका।।९।।

प्रातः ८.२१ वादने
आवासः इलाहाबादम्, ७.०२.२०१३ ई०

सड़े-दुर्गन्धयुक्त जल का वहन करने वाली नाली हूँ मैं–वराहों (सूकरों) की बगीची। शौचार्थियों की चहेती! जय हो मेरी, जय हो मेरी।।१।।

मुझमें (कभी) कमल नहीं खिला। राजहंसों ने कभी (मुझमें) विहार नहीं किया। मैं तो बस कृमियों और जलकुम्भियों से ही धन्य हो उठी हूँ। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।२।।

मैंने शपथ खाकर, सात फेरे लेकर (किसी का) पाणि-युगल नहीं पकड़ा (फिर भी) अमन-चैन में जीवित रूपाजीवा (वेश्या) हूँ मैं। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।३।।

कौमार-हरण करने वाले वर को छोड़ मैंने जुआरी को वल्लभ के रूप में वरण कर लिया। उसी के साथ सहधर्माचरण कर रही हूँ। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।४।।

ओह! जिस पुण्यवान् ने मेरे पास अपने प्राण गिरवी रख छोड़े थे (मुझे प्राणाधिक प्यार करता था) हृदयहीना मैंने उसी को, सोया हुआ ही मार डाला। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।५।।

धूलिधूसरित दर्पण के समान (विकृत) समाज में मैं सुप्रतिष्ठित हूँ। आश्चर्य है कि (उल्टे) वही पीड़ित है, चिल्लाता है। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।६।।

पापों से पर्याकुल जो गुप्त रौरव-नरक मेरे भीतर विद्यमान है उसे कौन देखता है? सारे के सारे प्रत्यक्ष में ही विश्वास करते हैं। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।७।।

तुम पातिव्रत निभाने में अग्रगण्य हो तो मैं भी **भोक्ता का व्रत** निभाने में दक्ष हूँ। तुम बँधुआ हो (परन्तु) मैं निर्बन्ध! जय हो मेरी, जय हो मेरी।।८।।

पुण्य क्या है और पाप क्या है? इन दोनों की गति (फल) क्या होती है? इसमें मेरी कोई श्रद्धा नहीं। जय हो मेरी, जय हो मेरी।।९।।

दुहिता जाता

गाय मङ्गलं दुहिता जाता।
वितर मोदकं दुहिता जाता।।१।।

पुत्र एकलः प्रायोऽरोदीत्।
सम्प्रति तस्य वयस्याऽयाता।।२।।

सुतां विना क्व नु पूता कुक्षिः?।
स्मितवदनेति चिन्तया माता।।३।।

वरविष्णोः पूजाऽवसरो मे।
पितेति मनुते, ददौ विधाता।।४।।

विना जानकीं क्व नु जनकत्वम्?
क्व नु रामायणकथाऽवदाता।।५।।

कुलदीपं जनयिष्यति पुत्री।
सोऽपि भविष्यति भाग्यविधाता।।६।।

शतसहस्रसुखमूलं दुहिता।
स्वसा स्नुषाऽम्बा जाया जाता।।७।।

तदाशिषा पितृकुलं पवित्रम्।
सा सावित्री सती सुजाता।।८।।

नारिः केषामपि भुवि नारी।
सा नरत्वमातृका विभाता।।९।।

पूर्वाह्णे १०.३५ वादने
आवासः इलाहाबादम्, ८.०२.२०१३ ई०

•

मङ्गलगीत गाओ, बेटी पैदा हुई है। लड्डू बाँटो (क्योंकि) बेटी पैदा हुई है।।१।।

अकेला बेटा (होता तो) प्राय: रोता ही रहता। अब उसकी सहचरी (भगिनी भी) आ गई है।।२।।

बेटी के बिना (माँ की) कोख पवित्र कहाँ? यही सोच कर (बेटी के आने से) माँ के मुख पर मुस्कान तैर रही है।।३।।

(अब) विष्णु-सरीखे वर की पूजा का अवसर प्राप्त होगा मुझे, जो विधाता ने दिया है। पिता की सोच ऐसी है।।४।।

जानकी के बिना पिता का **जनकत्व** भला कहाँ (सार्थक) और फिर कहाँ वह समुज्ज्वल रामयण-कथा?।।५।।

पुत्री कुलदीप को पैदा करेगी और वह (पुत्र) भी भाग्यविधाता बनेगा।।६।।

सैकड़ों, हजारों सुखों की जड़ है बेटी! वह बहन है, बहू है, जननी है, पत्नी है और पुत्री है।।७।।

उस (बेटी) के आशीर्वाद से पवित्र होता है पिता का कुल। वह बनती है सावित्री[1], सती[2] एवं सुजाता[3]।।८।।

धरा-धाम पर नारी किसी की भी शत्रु नहीं है। वह तो है देदीप्यमान पुरुषत्व की मातृका (आधारभूमि)।।९।।

•

---

१. सत्यवान् की पत्नी जिसने यम से पति के प्राण लौटा लिये।
२. शिवपत्नी जिन्होंने पति की मानरक्षा के लिए प्राणाहुति दे दी।
३. महामुनि कहोड की पत्नी एवं अष्टावक्र की जन्मदात्री।

तनुते हि राधावल्लभः

विकृते कलावपि **गोकुलं** वृणुते हि राधावल्लभः।
स्वीयं विभुत्वमनारतं तनुते हि राधावल्लभः।।१।।

रविजाततटे दिल्ली-वने स्वजनान् मुरलिकावादनैः।
ननु संस्कृताननुरञ्जयन् प्रथते हि राधावल्लभः।।२।।

युग**सम्प्लवं** पश्यन्नहो निजगीतिसाधनयाऽनिशम्।
लघुनौकयाऽब्धिं **धीवर**स्तरते हि राधावल्लभः।।३।।

अन्यच्च तस्य विलक्षणं दृष्टं मया किल कौशलम्।
स्वधियैव **संसरणे** स्थितस्तनुते हि राधावल्लभः।।४।।

माने, पुरस्करणे स्वकृत्यानामुदासीनस्सदा।
कर्म, स्थितप्रज्ञोत्तमः कुरुते हि राधावल्लभः।।५।।

परिणीय **सत्यवतीं** सतीमीशान इव गिरिनन्दिनीम्।
अपरार्धनारीश्वरतनुं हरते नु राधावल्लभः।।६।।

स्वाङ्कात्प्रसूय सुरापगां यमुनामथापि सरस्वतीम्।
देवात्म हैमवतं वपुर्धत्ते स राधावल्लभः।।७।।

वटुवत्सलः सुहृदुत्तमो विद्वत्प्रियः सुकृती कृती।
सुरभारती-विजयध्वजः स्फुरते हि राधावल्लभः।।८।।

स पुरन्दरस्सुरसंहृतेर्गीर्वाणवाणीगोमुषाम्।
क्लिश्यत्पणीनां ध्वंसने त्वरते स राधावल्लभः।।९।।

अद्य स्वजन्मदिने सतां सुहृदां शतायुः काम्यया।
उदयं **प्रतापोदयपुरे** लभते स राधावल्लभः।।१०।।

सन्ध्या ६.३० वादने
आवासः इलाहाबादम्, १२.०२.२०१३ ई०

●

---

१. प्रो० राधावल्लभ के पिताश्री का नाम
२. सम्प्लवः (काव्यसंकलन)
३. गीतधीवरम् (रागकाव्य)
४. अन्यच्च (उपन्यास) संसरणम् (काव्य)

(द्वापर की बात छोड़िये) इस विकृत कलि में भी राधावल्लभ **'गोकुल**[१]' में ही जन्म लेते हैं। वह अपने विभुत्व का निरन्तर प्रकाशन करते हैं।।१।।

यमुना के तट पर, दिल्लीरूपी (वृन्दा) वन में अपने संस्कृत सहचरों को वेणुवादन से आह्लादित करते हैं राधावल्लभ।।२।।

अपनी गीति-साधना से निरन्तर युग-**सम्प्लव**[२] (घात-प्रतिघात) को देखते हुए **धीवर**[३]-सरीखे राधावल्लभ, लघु नौका से सागर को भी पार कर लेते हैं।।३।।

और भी, मैंने उनका विलक्षण कौशल देखा है कि **संसरण**[४] (कालप्रवाह) में अपनी बुद्धि से ही स्थिर रहते हुए राधावल्लभ प्रकाश बिखेरते हैं।।४।।

सम्मान में तथा अपने कार्यों के पुरस्करण में सदैव उदासीन रहते हुए, स्थितप्रज्ञों में श्रेष्ठ राधावल्लभ (बस) कर्म करते रहते हैं।।५।।

गिरिनन्दिनी पार्वती को व्याहने वाले ईशान (शिव) के समान पतिव्रता **सत्यवती** को व्याह कर एक दूसरे **अर्धनारीश्वर**-विग्रह की समानता करते हैं राधावल्लभ।।६।।

अपनी गोदी से सुरापगा (गंगा) यमुना तथा सरस्वती को पैदा कर देवतात्मक हिमालय के स्वरूप को धारण करते हैं राधावल्लभ।।७।।

शिष्यों के प्रति वत्सल, उत्तम मित्र, विद्वत्प्रिय, पुण्यशील तथा सौभाग्यशाली राधावल्लभ सुरभारती की विजयपताका के समान स्फुरित होते रहते हैं।।८।।

राधावल्लभ देवसमाज के (नायक) पुरन्दर-सदृश हैं जो देववाणी (संस्कृत) रूपी गायों को चुराने वाले पापी **पणियों** के विध्वंसन में उद्यमशील हैं।।९।।

आज अपने जन्म-दिवस के अवसर पर, सज्जनों तथा मित्रों (द्वारा प्रदत्त) शतायुष्य-कामनाओं से राधावल्लभ महाराणा प्रताप के उदयपुर (नगर) में उदय प्राप्त कर रहे हैं।।१०।।

•

स्वप्नो मया न दृष्टः

स्वप्नो मया न दृष्टो ननु कल्पना कृता नो।
इच्छा च काऽपि दीर्घा सामर्थ्यतो वृता नो।।१।।

उद्घातिनी ममाऽऽसीद् यात्रोचिता धरित्री।
भ्रान्तं मयाऽप्रमादं गन्त्री समाश्रिता नो।।२।।

सुहृदामपि स्वभावो विदितो मयाऽनुभूत्या।
तस्माद्धि सङ्कटेपि प्रभुता परीक्षिता नो।।३।।

केषामहं न वाऽऽसं, मम किन्तु केऽपि नाऽसन्।
शाखोटकेन मयका पीड़ा प्रकाशिता नो।।४।।

विश्वास आत्मनियतौ मम सन्ततं दृढोऽभूत्।
तस्माच्च नग्ननृत्यैर्वैधेयताऽऽहृता नो।।५।।

न च सम्भवं यदासीत् तस्मिन्न कापि निष्ठा।
चिञ्चाफले कदाचिन्मृदुता प्रकल्पिता नो।।६।।

दृष्टो न बालुकायां तैलस्य कोऽपि लेशः।
तस्मात्कृतघ्नतायामिष्टा कृतज्ञता नो।।७।।

शुचिता न सम्भवाऽऽसीत् खलु कज्जलप्रकोष्ठे।
कुटिलाऽथ राजनीतिस्तस्मान्मया श्रिता नो।।८।।

दृष्ट्वा वनं दवाग्नौ निखिलं जगच्च दुःखे।
नारायणैकपरता स्वीया कदर्थिता नो।।९।।

पूर्वाह्णे १०.४२ वादने
शिमला, ८.०७.२०१३ ई०

•

(जीवन में) न मैंने (कोई अनुचित) स्वप्न देखा, नहीं निश्चित रूप से कल्पना की (मंसूबा बाँधा) और अपने सामर्थ्य (सीमा) से बड़ी किसी इच्छा का भी मैंने वरण नहीं किया।।१।।

यात्रा करने योग्य मेरी धरती उद्घातो (ढूहों) से परिपूर्ण थी। फिर भी सावधान होकर (बिना लड़खड़ाए) मैंने संचरण किया, किसी वाहन का सहारा नहीं किया।।२।।

अपने (वैयक्तिक) अनुभव से मित्रों के स्वभाव को भी मैंने जान लिया था। इसीलिये, संकट मैं भी उनकी प्रभुता (सहायता की सामर्थ्य) की परीक्षा नहीं ली।।३।।

मैं किनका (सगा) नहीं था? परन्तु वे कोई भी मेरे (सगे) नहीं थे। फिर भी **शाखोटक** बने मैंने अपनी पीड़ा प्रकाशित नहीं की।।४।।

अपने (समुन्नत) भविष्य के प्रति मेरा विश्वास निरन्तर दृढ़ रहा। इसीलिये नंगी नाचों द्वारा मैंने मूर्खता का प्रदर्शन नहीं किया (उन्नति के लिए किसी की जी-हुजूरी नहीं की)।।५।।

जो कुछ (मेरे जीवन में) सम्भव नहीं था, उसके प्रति मेरी कोई निष्ठा (आसक्ति) भी नहीं थी। **इमली की फली में मैंने मिठास की आशा नहीं की।।६।।**

बालू में मैंने तेल का कोई नामो-निशान भी नहीं देखा। इसीलिये **कृतघ्नता** में (कभी) **कृतज्ञता** की सम्भावना नहीं की।।७।।

काजल की कोठरी में साफ-सुथरा बना रहना कथमपि संभव नहीं था। इसीलिये कुटिल राजनीति का दामन मैंने थामा नहीं।।८।।

(समूचे) वन को दवाग्नि में तथा संसार को दुःख में डूबा देख अपनी **नारायणैकपरता** को मैंने कदर्थित नहीं होने दिया।।९।।

•

कवीन्द्रोऽभवम्

लघुत्वङ्गतस्ते गृहं गत्वा-गत्वा।
खलं त्वामहं सज्जनं मत्वा-मत्वा।।१।।

क्षमो नाऽभवं हृद्विषं ते ऽनुमातुम्।
मुखोच्छ्वासितां ते सुधां हृत्वा-हृत्वा।।२।।

स्वयं घोषिता स्वाऽज्ञता किं मया नो?
स्वमर्माणि तुभ्यं सखे! दत्वा-दत्त्वा।।३।।

मृगेन्द्रोऽभवः कूटयोगैररण्ये।
नखैः पुष्पकल्पान् मृगान् हत्वा-हत्वा।।४।।

स रामोऽभवल्लोकवन्द्यैश्चरित्रैः।
अभूद्रावणस्सो ऽप्यघं वृत्वा-वृत्वा।।५।।

ववाराऽद्रिकन्यां शिवोऽन्ते स्मरार्तः।
वराकं स्मरं भस्मभृत् कृत्वा-कृत्वा।।६।।

अहत्वाऽभिलाषं वृतं तस्य दास्यम्।
बिभर्म्यद्य तत्स्वामितां, हत्वा हत्वा।।७।।

मया निर्मिता स्रक् सदा शारदायै।
प्रसूनानि वाचामहो चित्वा-चित्वा।।८।।

रसाऽलङ्कृतिं वक्रतां वा ध्वनिं वा।
कवीन्द्रोऽभवं, कं न वा जित्वा-जित्वा।।९।।

नीपा गेस्टहाउस, सन्ध्या ८.१७ वादने
एन्०सी०ई०आर०टी०, नई दिल्ली, ४.०८.२०१३ ई०

•

तुम्हारे घर रोज़-रोज़ पहुँच कर ही मैं हल्का बन गया। तुम जैसे **खल** को **सज्जन** मानते ही मानते (मैं महत्त्वहीन बन गया।।१।।

तुम्हारे हृदय में भरे हलाहल का अनुमान लगाने में मैं समर्थ नहीं हो पाया। बस, मुख से झरती तुम्हारी अमृत-वार्ता का आनन्द लेते ही लेते।।२।।

क्या अपनी **मूर्खता** मैंने स्वयं घोषित नहीं कर दी? मेरे मीत! तुम्हें अपने (ज़ीवन के) रहस्यों को बता-बता कर।।३।।

अपनी कूटनीतिक चालों से **जंगल के शेर** बन गये हो, फूल-सरीखे (नरम) हिरनों को नाखूनों से मार-मार कर।।४।।

लोकवन्दनीय (अपने) चरितों के कारण वह (दशरथनन्दन) **राम** बन गये। परन्तु वह (दूसरा विश्रवा का पुत्र भी) पाप बटोर-बटोर कर **रावण** बन गया।।५।।

अन्ततः स्मरार्त होकर शम्भु ने हिमाचलनन्दिनी (पार्वती) का वरण कर ही लिया, परन्तु बेचारे स्मर (कामदेव) को राख बना-बना कर।।६।।

जब तक मैंने अभिलाषा (कामना) को मारा नहीं, उसका दास बना रहा। अब उसे विध्वस्त करके ही उसका स्वामी बन बैठा हूँ।।७।।

मैंने सदैव (भगवती) शारदा के लिये माल्य निर्मित किया, वाणी के पुष्पों को चुन-चुन कर।।८।।

रसालङ्कार, वक्रता अथवा ध्वनि! किन-किन को स्वायत्त करके मैं **कवीन्द्र** नहीं बन गया? ।।९।।

•

किन्नु काञ्चनेन

किन्नु काञ्चनेन, वञ्चनेन जीवनं यदि।
यापितं, न दत्तमात्मना न चापि दापितम्।।१।।

किन्नु पण्डितप्रकाण्डवक्त्रनिर्गताऽशयैः।
नो श्रमैरधीतमात्मनाऽथवा न पाठितम्।।२।।

भारतीकथारतिर्वृथैव, बन्धुभिस्समं।
वैरमात्मनो यदि ध्रुवं न भोः समापितम्।।३।।

धिक् तदीयजीवनं न येन पौरुषैः स्वकैः।
कल्पितं सुखं परस्य नैव चापि कारितम्।।४।।

तैलतां गतो भवानहञ्च नीरवत् स्थितः।
ह्वन्न यन्मिथस्सखे! त्वया मया च गाहितम्।।५।।

नो दिनाल्लघीयसी विभाति यामिनीस्थितिः।
लोकभास्करोऽपि नो निहन्ति तत्समाहितम्।।६।।

काच एव सेवितो मया प्रदीप्तिवञ्चनैः।
मद्विवेकमेव धिक् न हीरकं समाहृतम्।।७।।

जीवनं व्यतीतमेव विक्रमैर्नतोन्नतैः।
चिन्तयाऽधुना सखे! हृतं कियच्च हारितम्।।८।।

पूर्वाह्णे ९.३५ वादने
शिमला, १७.०८.२०१३ ई०

•

सुवर्ण (सञ्चय) से क्या लाभ यदि जिन्दगी गुजार दी दूसरों की वञ्चना से? न अपने से (वह सुवर्ण) दिया, न ही दूसरो से दिलवाया।।१।।

पण्डित-प्रकाण्डों के मुख से निर्गत वक्तृताओं से क्या लाभ कि जिन्होंने न स्वयं परिश्रमपूर्वक (शास्त्रों को) पढ़ा न ही, (शिष्यों को निष्ठापूर्वक) पढ़ाया।।२।।

भाइयों के साथ **महाभारत** की कथा (के पढ़ने-सुनने) में प्रेम प्रदर्शित करने का क्या लाभ यदि (किसी के साथ बँधा) अपना ही वैर समाप्त नहीं कर पाये।।३।।

धिक्कार है उसके जीवन को जिसने अपने पौरुष से न ही दूसरों का सुख कल्पित किया, न ही (दूसरों से) करवाया।।४।।

मैं तो पानी ही बना रहा। परन्तु आप बन गए तेल! यही कारण है मित्र! कि तुम्हारा और हमारा हृदय एकाकार नहीं हो पाया।।५।।

रात की स्थिति, दिन की अपेक्षा लघु (महत्त्वहीन) नहीं प्रतीत होती, क्योंकि लोक को प्रकाशित करने वाला सूर्य भी रात की आकांक्षा को पूर्ण नहीं कर पाता (अर्थात् मध्यरात्रि में नहीं उग पाता)।।६।।

चमक-दमक के धोखे में मैनें **काच** की ही सेवा की। मेरे विवेक को ही धिक्कार है कि **हीरक** की प्राप्ति नहीं कर सका।।७।।

नतोन्नत पुरुषार्थों में ही सिरा गया जीवन! अब तो मित्र! यह सोचो कि कितना जुटा पाये और कितना गँवाया? ।।८।।

●

वराका राजनेतारः

न यदि वाऽजिह्मगतयस्ते भवेयुर्निर्विषाः सर्पाः।
महात्मानः कथं स्युर्भो वराका राजनेतारः।।१।।

विकल्पा विधिनिषेधानां पराऽचरणेषु गृह्यन्ते।
कथं स्युः पापमुक्ताः किन्तु पापानां विधातारः।।२।।

दुराचरणं यदि स्यादङ्गजनितं तर्हि परिवर्ज्यम्।
रुधिरदुर्वृत्तभाजां नो त्रिदेवाश्चापि पातारः।।३।।

कुवीर्यं धिक पितुर्मातुश्च कुक्षिं सर्वथा धिग्धिक्।
यतो जाता इमे दनुजाः स्वराष्ट्रस्यैव हन्तारः।।४।।

उपस्थे पादपो जातः प्रसन्नास्ते ऽथ दृश्यन्ते।
अहो छाया ऽभवत्सुलभेति निर्लज्जं प्रवक्तारः।।५।।

मिथस्ते शात्रवं संसदि कृतघ्ना अभिनयन्त्यनिशम्।
बहिः कादम्बरीसाक्षिकसुभगसख्यस्य संसारः।।६।।

अहो पश्यन्त्वमीषां दुर्हृदां व्याघातमपि वदताम्।
यदुचितस्सांसदोपरि नो मनाङ् न्यायालयाभारः।।७।।

अलम्भोश्चीनपाकिस्तानयोर्दुश्चिन्तया, चिन्तय।
कथं स्याद्रक्तबीजानां समेषां हन्त संहारः।।८।।

न यावन्नामशेषास्ते भवन्त्यसुराः क्षणे युगपत्।
निरर्थकमेव जनतन्त्रं प्रगुणितश्च व्यथाभारः।।९।।

निशीथे १२ वादने
चण्डीगढ़म्, १८.०८.२०१३ ई०

यदि वे निर्विष साँप भी सीधी चाल वाले नहीं हो सकते हैं (क्योंकि टेढ़ा चलना ही उनका निसर्ग है) तो फिर बेचारे राजनेता भी **महात्मा** कैसे हो सकते हैं बन्धुओं? ।।१।।

विधि और निषेध के विकल्प तो परायों के आचरणों में ही ग्रहण किये जाते हैं, परन्तु जो स्वयं पापों के सम्पादक हैं, वे पाप-मुक्त कैसे हो सकते हैं? ।।२।।

दुराचार यदि शरीर के किसी अंग से हुआ हो तो वह (भवष्यि में) परिवर्ज्य है (कि गाली नहीं दूँगा, हाथ नहीं उठाऊँगा, व्यभिचार नहीं करूँगा आदि) **परन्तु जिनके रक्त में ही पाप धुला हो तो उनके रक्षक तो त्रिदेव भी नहीं हो सकते।।३।।**

पिता के कु-वीर्य को धिक्कार है। धिक्कार है सर्वथा माँ की कोख को–जिनसे पैदा हुए हैं अपने ही राष्ट्र के विध्वंसक वे राक्षसाधम।।४।।

चूतड़ पर पेड़ पैदा हो गया है तो वे प्रसन्न दीख रहे हैं। बड़ी निर्लज्जता से प्रचार कर रहे हैं कि चलो छाया तो सुलभ हो गई।।५।।

संसद् में ये कृतघ्न रात-दिन शत्रुता का अभिनय करते रहते हैं, परन्तु बाहर दीखता है उनके सुख का संसार-शराब की बोतलों के साथ।।६।।

आश्चर्य है? इन दुरात्माओं का **'वदतो व्याघात'** तो देखो। ये कह रहे हैं कि सांसदों के ऊपर न्यायालय का जरा सा भी दबाव नहीं होना चाहिए।।७।।

भाइयों! चीन और पाकिस्तान की दुश्चिन्ता करना छोड़ो। अब तो यह सोचो कि समस्त (देशद्रोही) रक्तबीजों का संहार कैसे हो सकता है? ।।८।।

जब तक ये राक्षस, एक ही साथ, क्षण भर मैं नामशेष नहीं हो जाते तब तक निरर्थक है लोकतंत्र! व्यथा का भार बढ़ता ही रहेगा।।९।।

•

विधे! कुर्यामहं किम्?

ममाऽसीत् सुदृढ़विश्वासोऽथ रज्जौ।
विधे! कुर्यामहं किं, सैव भग्ना।।१।।

समानीता ययोपरि पूर्णकलशी।
इदानीं साऽपि कूपे क्वापि मग्ना।।२।।

विपदमेकां दृढ़ं भुक्त्वा प्रशमये ।
परन्त्वपराऽनु दृश्यत एव लग्ना।।३।।

भवेत्सा कामिनी वा, सङ्कथा वा।
न किं जन्मक्षणे समुदेति नग्ना।।४।।

ऋते ऽप्यवगाहनाज् ज्ञेयं कथम्भोः।
अगाधा वापिकेयं वोरुदघ्ना।।५।।

सदिच्छाबीजमुप्तं किं न मयका।
मनोभूरेव ते जाता कृतघ्ना।।६।।

परीता सांसदैर्दनुजैः पुनर्भूः।
समुद्ध्रियतां हरे! सा दन्तलग्ना।।७।।

जयाशाऽद्याप्यहो दौर्योधनी सा।
कथा यद्यपि तदीयास्त्यूरुभग्ना।।८।।

स्रवति कविता मदीया वाक्प्रचारे।
रणन्नूपुरनिभा तत्पादलग्ना।।९।।

पूर्वाह्णे ४.१२ वादने
अम्बा गेस्टहाउस, महानगरम्, लखनऊ, २५.०८.२०१३ ई०

•

रस्सी (की मजबूती) में मेरा सुदृढ़ विश्वास था। प्रभो! क्या करूँ मैं (जब) वही टूट गई।।१।।

जिस (रस्सी) ने (जल से परिपूर्ण) गागर को ऊपर तक खींच लिया था वह (गागर) भी इस समय (गिर कर) कुएँ में कहीं गुम हो उठी है।।।२।।

एक विपत्ति को पूरी कुब्बत से झेल कर शान्त करता हूँ परन्तु तभी दूसरी पीछे लगी दीखती है।।३।।

वह चाहे कामिनी हो अथवा कोई कहानी (कथासूत्र) क्या जन्म लेते समय नग्न ही प्रकट नहीं होती? ।।४।।

मेरे भाई! बिना थाह लगाए यह कैसे जाना जा सकता है कि यह बावड़ी अगाध (अत्यन्त गहरी) है अथवा घुटने मात्र पानी वाली।।५।।

क्या मैंने सदिच्छा-रूपी बीजों को नहीं बोया? परन्तु तुम्हारी मन रूपी भूमि ही कृतघ्न निकली (किं अंकुर तक नहीं फूटे)।।६।।

सांसदों-रूपी दानवों से पृथ्वी पुनः आतङ्कित हो उठी है। हे परमेश्वर! उसे (एक बार पुनः) दाँतों पर उठा लो।।७।।

यद्यपि उसकी कहानी **टूटी जाँघ** तक आ पहुँची है तथापि दुर्योधन को आज भी (अश्वत्थामा के बल पर) विजय की आशा है। आश्चर्य है।।८।।

जब माँ शारदा सञ्चरण करती हैं तब मेरी कविता, उनके चरणों में संलग्न 'रुनझुन' करते बिछुओं के समान मुखर हो उठती है।।९।।

•

त्वमेको गतः

त्वमेको गतः किन्तु याता अनेके।
सुतस्सोदरस्तातपादोऽथ मित्रम्।।१।।

कथं नौरियं संस्पृशेदब्धिकूलम्।
अहो खण्डितं जीर्णशीर्णं वहित्रम्।।२।।

न तूली करे, नैव वर्णा, न पर्णम्।
कथं तर्हि निर्मीयतां चारु चित्रम्।।३।।

क्व वा विक्रमः क्वाऽप्यसौ पुष्यमित्रः।
कथं कालिदासो ऽचिनोदग्निमित्रम्।।४।।

न वा काञ्चनं हीरकं वृक्षवृन्ते।
तदन्विष्यताम्भो गृहीत्वा खनित्रम्।।५।।

अयम्मे ऽस्ति वप्ता ऽभिषेक्ता पिताऽपि।
य आयाति हस्ते दधानो दरित्रम्।।६।।

अधस्तान्नु पुच्छस्य सर्वे स्त्रियस्ते।
ध्रुवं भद्र! जानीहि नेतुश्चरित्रम्।।७।।

क्वचित्कन्यका शम्भली वा परोढा।
न कस्मादहो रोचते स्वं कलत्रम्।।८।।

भवन्तं हरिः स्वीयदूतं युयोज।
दिदृक्षामि बन्धो! तदस्ति क्व पत्रम्।।९।।

पूर्वाह्णे ४.५१ वादने
अम्बा गेस्टहाउस, महानगरम्, लखनऊ, २५.०८.२०१३ ई०

गये तो तुम अकेले किन्तु (तुम्हारे साथ) ढेर सारे लोग चले गये– बेटा, सगा भाई, पिता तथा मित्र (क्योंकि तुम किसी के पुत्र, किसी के सहोदर, किसी के पिता और बहुतों के मित्र थे)।।१।।

यह नाव समुद्र का तट छुए तो कैसे? हाय रे! इसकी तो जीर्ण-शीर्ण पतवार ही खण्डित हो उठी।।२।।

न हाथ में है तूलिका (कूँची) न रङ्ग हैं और न ही कागज। तो फिर रमणीय चित्र कैसे बनाया जाय? ।।३।।

कहाँ तो वह (सम्राट्) विक्रमादित्य और कहाँ वह (सेनापति) पुष्यमित्र शुङ्ग? तो फिर **कालिदास** ने **अग्निमित्र** को (अपने मालविकाग्निमित्रम् नाटक का नायक) कैसे चुन लिया।।४।।

भाई! सोना और हीरा पेड़ की टहनी पर नहीं लगे होते हैं। अरे उन्हें तो खोजो हाथ में फावड़ा लेकर।।५।।

यही है मेरा वप्ता (बोने वाला) अभिषेक्ता (सींचने वाला) थौर पिता (रक्षा करने वाला) भी! जो आ रहा है हाथ में दराँती लेकर (मुझे काटने के लिए)।।६।।

पूँछ के नीचे तो सबके सब मादा ही हैं। मेरे भाई! निश्चित रूप से जान लो, यही है नेताओं का चरित्र।।७।।

कहीं कन्या में तो कहीं किसी हरजाई औरत में या फिर किसी और की घर वाली में (जकड़े हैं) **अपनी पत्नी आखिर क्यों नहीं रास आती?।।८।।**

(अच्छा) तो आपको भगवान् ने अपना दूत नियुक्त किया है (मुझे लाने के लिए?) तो बन्धु! कहाँ है वह (उनका) पत्र, मैं देखना चाहता हूँ।।९।।

•

केऽपि कछवाहाः

तुरुष्केभ्यस्सुतां दत्वा महैश्वर्यं नु यैर्भुक्तम्।
इदानीमपि विराजन्ते स्वराष्ट्रे केऽपि कछवाहाः।।१।।

श्रृगालैः कुक्कुरैर्ननु रासभैरथवा बलीवर्दैः।
न जाने, कैः समं योग्यास्तुलयितुं हन्त कछवाहाः।।२।।

स्वधर्मं स्वाभिमानं स्वीयरक्तं संस्कृतिं स्वीयाम्।
सुखार्थं किन्न विक्रेतुं सदा ऽग्रे सन्ति कछवाहाः।।३।।

महाराणाप्रतापानामहो भग्नाऽवशेषेषु।
स्वकीयं राजसौधं निर्मितुं कुशला नु कछवाहाः।।४।।

परेषां धार्मिकोन्मादं द्विसन्धानञ्च चारित्र्यम्।
विपश्यन्तो ऽपि धृतराष्ट्राः प्रतीयन्ते ऽथ कछवाहाः।।५।।

प्रधानं राष्ट्रमन्त्रित्वं मदीयं स्यात्सकृत् कथमपि।
महाप्रलयस्ततः स्यात्काममिति कलयन्ति कछवाहाः।।६।।

तुरुष्काणां विना कृपया न मे स्वप्नोऽयमाप्तव्यः।
अतस्ते राधनीयाः मात्रमिति गणयन्ति कछवाहाः।।७।।

न रामो, नैव हिन्दुत्वं समर्थं किञ्चिदपि दातुम्।
ततो जामातृकल्पं तदितरं शमयन्ति कछवाहाः।।८।।

न निर्जनदुर्गसौधं स्वीयवंशानां विलोकन्ते।
न शिक्षन्ते किमप्यधुनाऽपि कार्तघ्न्येन कछवाहाः।।९।।

अपराह्णे ५.३४ वादने
अम्बा गेस्टहाउस, महानगरम्, लखनऊ, २५.०८.२०१३ ई०

●

तुर्कों को बेटी देकर जिन्होंने महैश्वर्य भोगा, ऐसे कुछ कछवाहे इस समय भी अपने राष्ट्र में विराज रहे हैं।।१।।

सियारों, कुत्तों, गर्दभों अथवा बैलों के साथ! न जाने किनके साथ तुलना करने योग्य हैं ये कछवाहे।।२।।

अपना धर्म, अपना अभिमान, अपना रक्त तथा अपनी संस्कृति! सुख-सुविधा के लिए क्या कुछ बेच देने के लिए ये कछवाहे सदैव आगे नहीं रहे हैं? ।।३।।

महाराणा प्रताप-सरीखों (देशभक्तों) के खण्डहरों पर अपना राजमहल बनवाने में चतुर हैं ये कछवाहे।।४।।

दूसरों का धार्मिक उन्माद तथा दुहरा चरित्र देखते हुए भी ये कछवाहे राष्ट्र के कर्णधार बने रहे हैं।।५।।

राष्ट्र में मेरा **प्रधानमंत्रित्व**, चाहे जिस किसी भी प्रकार, बस एक बार संभव हो जाय। भले ही उसके बाद **महाप्रलय** आ जाय (और संसार नष्ट हो जाय) कछवाहे यही सपना देखते हैं।।६।।

बिना तुर्कों (मुसलमानों) की कृपा के, मेरा यह सपना पूर्ण होने को नहीं है। अतः उनकी जी हुजूरी करते रहना आवश्यक है। कछवाहे बस यही गुनते रहते हैं।।७।।

न **राम** और न ही **हिन्दुत्व**–कुछ भी दे पाने में समर्थ हैं। अतएव कछवाहे दामाद-सरीखे, उन दोनों से इतर (किसी तीसरे) को ही प्रसन्न बनाये रखना चाहते हैं।।८।।

ये कछवाहे अपने खानदान के बियाव किलों और महलों को नहीं देखते। (पूर्वाचरित अपनी) कृतघ्नता से भी वे कुछ शिक्षा नहीं लेते।।९।।

•

वात्यापराजितोऽभूत्

वर्ती लघीयसी नो, छिद्रं न वा शरावे।
स्नेहे ऽक्षते ऽपि दीपो वात्यापराजितोऽभूत्।।१।।

भवनेऽथ जीर्णकुड्ये नाल्पान्यहो बिलानि।
नकुलस्य किन्तु वासाद् भुजगस्स मर्दितोऽभूत्।।२।।

प्रविहाय मर्कटांस्तान् पृच्छेन्नु कः कपित्थम्?
मधुमेहसत्कृपातस्सोऽपीह रक्षितोऽभूत्।।३।।

को वाऽन्यथोपयोगो लोके श्रुतो ऽस्ति शम्याः?
किन्त्वध्वरेन्धनत्वात् स गुणोऽपि सत्कृतोऽभूत्।।४।।

प्रथते ऽन्यदेव शास्त्रं लोकस्य सर्वमान्यम्।
विहगोऽपि नीलकण्ठः प्रास्थानिके मतोऽभूत्।।५।।

काव्यात्मतत्त्वसौक्ष्म्ये रसिकानुभूयमाने।
काव्यार्थ एष, मन्ये, व्यङ्ग्यैः समन्वितो ऽभूत्।।६।।

गुरुमन्त्रणाममत्वा, दाने कटिं निबध्नन्।
द्रष्टुं हरेर्विभुत्वं बलिरेष सन्नतो ऽभूत्।।७।।

पशुपक्षिणां कृमीणां ननु दुष्करो ऽस्ति मोक्षः।
स बहिर्न्वसंस्कृतानां शतकोटिजन्मतोऽभूत्।।८।।

आङ्ग्लीमधीत्य जाता यस्य प्रकामतृप्तिः।
मन्ये वराहकल्पः स मलेन तर्पितो ऽभूत्।।९।।

अपराह्णे ६.५८ वादने
अम्बा गेस्टहाउस, महानगरम्, लखनऊ, २५.०८.२०१३ ई०

•

बाती भी छोटी नहीं थी, शराब (दीपपात्र) में छेद भी नहीं था (कि तेल चू जाता) तेल भरा होने पर भी (बेचारा) दिया आँधी से हार खा गया।।१।।

पुरानी दीवार वाले घर में बिलें कम नहीं थी (साँप की सुरक्षा के लिए) परन्तु नेवले के डेरा डाल देने के कारण वह साँप मारा गया।।२।।

उन वानरों को छोड़कर दूसरा कौन कपित्थ-फल (कैंथ) को पूछे? मधुमेह (डॉयबिटीज़) की कृपा से वह भी अब समाज में रक्षा पाने लगा (पथ्यभूत होने के कारण)।।३।।

शमी का, भला लोक में, दूसरा और कौन उपयोग सुनाई पड़ा है? परन्तु यज्ञ की लकड़ी (इध्म) होने के कारण, उसका वह गुण भी आदरणीय बन गया।।४।।

समाज का तो कोई दूसरा ही शास्त्र होता है सर्वमान्य तथा प्रशंसनीय! तभी तो, पक्षी होते हुए भी (नीलकण्ठ शिव के साम्यवश) नीलकण्ठ प्रस्थान-वेला में शकुन माना गया।।५।।

काव्यात्म-तत्त्व की सूक्ष्मता के रसिकों (सहृदयों) द्वारा अनुभूयमान मात्र होने के कारण ही मैं समझता हूँ कि यह काव्यार्थ **व्यङ्ग्य** से समन्वित हो गया (क्योंकि व्यङ्ग्य सूक्ष्म होता है)।।६।।

गुरु (शुक्राचार्य) की मंत्रणा को (भी) न मान कर, दान देने के लिए संकल्पबद्ध होकर श्रीहरि का विभुत्व देखने के लिए यह (दानवराज) बलि सन्नत हो उठा।।७।।

पशु-पक्षियों तथा कीड़ों-मकोड़ों का **मोक्ष** दुष्कर ही होता है। तथापि वह (मोक्ष) **अ-संस्कृतों** के लिए तो शत-कोटि जन्मों से भी बाहर (पृथक्) हैं।।८।।

अंग्रेजी पढ़कर जिनकी भरपूर तुष्टि हो गई, मैं समझता हूँ कि वराह (सूअर) के समान वे मल खाकर तृप्त हो गये।।९।।

●

यतो वयमास्तिकाः

अस्मान् प्रभो! त्वमुपेक्षसे नूनं, यतो वयमास्तिकाः।
मदगर्वितो ऽपि विलोक्यसे नूनं, यतो वयमास्तिकाः।।१।।

दयसे न रक्षसि सङ्कटे, न च पारयसि विपदम्बुधेः।
हससीव किञ्च, कठोरहृन्नूनं, यतो वयमास्तिकाः।।२।।

संसृजसि पुष्यसि संहरसि शास्त्रैरिदं किल भाषितम्।
अस्मद्विवशताहेतुरिति नूनं, यतो वयमास्तिकाः।।३।।

पोतो ऽसि जीवनसागरे, तव पोतविहगा वयमपि।
अन्यन्न शरणं मादृशां नूनं, यतो वयमास्तिकाः।।४।।

दीना वयं हीना वयं जगदीश! निर्गतिका वयम्।
त्वय्येव परिलीनास्ततः क्षीणा, यतो वयमास्तिकाः।।५।।

त्वय्येव विश्वस्ताः प्रभो! दुःखेषु चापि, सुखेषु च।
घातयसि विश्वासं कथं भगवन्! यतो वयमास्तिकाः।।६।।

ये त्वां तृणाय नु मन्वते गच्छन्ति जातु न मन्दिरम्।
सुखिनस्त एव न चाऽपरे नूनं, यतो वयमास्तिकाः।।७।।

लघु धैर्यमस्माकं प्रभो! सर्षपनिभा च सहिष्णुता।
अस्मांस्तथापि परीक्षसे, कस्माद्यतो वयमास्तिकाः।।८।।

मा क्रीड भक्तानामहो दुर्भाग्यकृत्रिमपुत्रकैः।
माऽऽत्मानमभिषेचय तदश्रुचयैर्यतो वयमास्तिकाः।।९।।

अपराह्णे १२.१५ वादने
जयपुररेलस्थानकम्, २६.०८.२०१३ ई०

हे प्रभो! निश्चय ही आप हम लोगों की उपेक्षा करते हैं, क्योंकि हम लोग **आस्तिक** हैं (आपके अस्तित्व में आस्थावान् हैं) आपतो मद-गर्वित से दृष्टिगोचर होते हैं। क्योंकि हम आस्तिक हैं।।१।।

आप कृपा नहीं करते, सङ्कट में रक्षा नहीं करते। विपत्तिरूपी समुद्र से पार नहीं लगाते। हे कठोरहृदय! आप तो हमारा उपहास-सा करते हैं।।२।।

शास्त्रों ने यही बताया है कि आप ही (जीव की) सृष्टि करते हैं, पोषण करते हैं और संहार (भी) करते हैं। यही तो है हर हाल में हमारी विवशता का कारण! क्योंकि हम आस्तिक हैं।।३।।

जीवनरूपी सागर के आप पोत हैं और हम भी हैं उसी जहाज के पंछी! निश्चय ही मुझ जैसों का और कोई शरण (आश्रय) भी नहीं। क्योंकि हम आस्तिक हैं।।४।।

हे जगदीश! हम दीन हैं (सर्वविध) हीन हैं। हम (सर्वथा) निर्गतिक हैं। चूँकि मात्र आप में ही समाये हुए हैं इसलिये क्षीण (पराधीन) भी हैं। (यह सब इसीलिए कि) हम आस्तिक हैं।।५।।

दुःखों में भी और सुखों में भी हे प्रभो! आप पर ही विश्वास रखते हैं। हे भगवन्! (तब फिर) उस विश्वास को तोड़ते क्यों हैं? (इसीलिये कि) हम आस्तिक हैं?।।६।।

जो (दुरभिमानी, नास्तिक) आपको तिनके के भी बराबर नहीं गिनते, जो कभी (भूले-भटके भी) मन्दिर में नहीं जाते वही लोग सुखी हैं न कि अन्य लोग (जो आपके भक्त हैं। चूँकि हम आस्तिक हैं (इसीलिए ऐसा है)।।७।।

हे प्रभो! हमारा धैर्य बहुत थोड़ा है। हमारी सहनशीलता भी (बस) सरसों के बराबर है। फिर भी आप हमारी परीक्षा लेते हैं! क्योंकि हम आस्तिक हैं।।८।।

ओह! भक्तों के दुर्भाग्यरूपी गुड्डे-गुड़ियों के साथ खिलवाड़ मत कीजिए, प्रभो! उनके आँसुओं के समूह से स्नान मत कीजिए। नाथ! क्योंकि हम आस्तिक हैं।।९।।

●

बद्धा कटी

आयान्ति दिवसाः कीदृशा इति लक्षितुं बद्धा कटी।
सुहृदोऽथ केऽरय इत्यपीह परीक्षितुं बद्धा कटी।।१।।

जात्यन्धविश्वासो ममेदानीमभून्ननु दृष्टिमान्।
परमार्थतस्तस्मान्नु सत्यमवेक्षितुं बद्धा कटी।।२।।

के के न विपदां वारणे जाताः सखायो ऽप्यभिनयैः।
सम्प्रति नु तेषामभिनयं समवेक्षितुं बद्धा कटी।।३।।

ये जागरे ऽमृतघटनिभाः सुप्तौ च विषकुम्भोपमाः।
तेषां द्विसन्धानं विचित्रमिहेक्षितुं बद्धा कटी।।४।।

विरचय्य कीर्तिशतीं प्रणयिनोऽन्यानलघयन्ये शठाः।
वर्षामकालबलाहकानां स्वादितुं बद्धा कटी।।५।।

पुरतोऽथ पुच्छोद्धूलनं पश्चाच्च निस्त्रपबुक्कनम्।
येषां नु, तेषां जातिगुणगणमीक्षितुं बद्धा कटी।।६।।

सारस्वतीं विक्रीय ये विपणौ प्रतिष्ठां मामकीम्।
धनिनो ऽभवंस्तेषामधोगतिमीक्षितुं बद्धा कटी।।७।।

यासामहो कौमारहरणं विहितमन्यैर्लम्पटैः।
अथ किं हृतं तासां धवैरिति वीक्षितुं बद्धा कटी।।८।।

यातो ऽस्ति काबीरीदशामभिराजराजेन्द्रो ऽधुना।
सर्वेऽप्रमत्ताः सन्तु तेन गवेषितुं बद्धा कटी।।९।।

कविता कवेर्मुखनिर्गता साक्षात्कृपाणी निष्कृपा।
स्वं स्वं नु निष्कवचोऽप्यवतु परिकीर्तितुं बद्धा कटी।।१०।।

अपराह्णे १.१५ वादने
फुल्लेराजंक्शनस्थानकम्, २६.०८.२०१३ ई०

•

(अब आगे) कैसे दिन आने वाले हैं? यह देखने के लिए (मैंने) कमर कस ली है। कौन मित्र हैं तथा कौन शत्रु? यह परीक्षण करने के लिए (भी) कमर कस ली है।।१।।

मेरा जन्मजात अन्धविश्वास अब निश्चय ही दृष्टि-सम्पन्न हो चला है। इसलिये, परमार्थतः सत्य को जाँचने-परखने के लिए मैंने कमर कस ली है।।२।।

विपत्तियों का निवारण करने में (अपने) **अभिनयों** से कौन-कौन मित्र नहीं बन गये? अब उनके अभिनयों का जायज़ा लेने के लिए मैंने कमर कस ली है।।३।।

जो जागरण-काल में अमृत-कलश के समान रहे तथा सो जाने पर विषकुम्भ के समान बन गये। अब उनका विलक्षण **द्विसन्धान** (दुहरा चरित्र) देखने के लिए कमर कस ली है मैंने।।४।।

जिन शठों में **कीर्तिशती** गढ़ कर, अन्यान्य प्रेमियों को छोटा (महत्त्वहीन) सिद्ध कर दिया, उन **अकालजलदों** की वर्षा का स्वाद लेने के लिए मैंने कमर कस ली है।।५।।

सामने (पड़ने पर) तो पूँछ हिलाना और पीछे से निर्लज्ज होकर भौंकना? यह कला है जिनकी, उनकी जाति तथा गुणगणों को परखने के लिए मैंने कमर कस ली है।।६।।

मेरी सारस्वती प्रतिष्ठा को बाजार में बेंच कर जो धनी-मानी बन गए हैं उनकी अधोगति देखने के लिए मैंने कमर कस ली है।।७।।

जिनका **कौमार-हरण** अन्यान्य लम्पटों ने किया, आश्चर्य है कि उनके पतियों ने (जिनसे वे व्याही गईं) उनका क्या हरण किया? यह देखने के लिए मैंने कमर कस ली है।।८।।

अब राजेन्द्र **कबीर के अक्खड़पने** पर उतर आया है। इसलिए सब लोग सावधान हो जाँय। सच्चाई की खोज-बीन के ही लिए मैंने कमर कस ली है।।९।।

कवि के मुँह से निकली कविता साक्षात् कृपाणी जैसी ही होती है– नृशंस! जो कवच-विहीन हो वह अपनी-अपनी रक्षा करे। उन्हें काट डालने के लिए मैंने कमर कस ली है।।१०।।

●

गणयानि कथं कं कम्?

उद्यानमिदं के केऽलुण्ठन्न निजाऽवसरे।
अरयो ऽथ सखायो वा, गणयानि कथं कं कम्।।१।।

पाटीरचटुलगन्धोन्मादैर्नु हृतात्मानः।
भुजगाश्च समायाताः गणयानि कथं कं कम्।।२।।

सहकारतरलशाखाश्रयिणो हि पिका मत्ताः।
नित्यं न चुकूजुः किं, गणयानि कथं कं कम्।।३।।

प्रणनर्त घनध्वानोच्छ्वसितोऽत्र वने बर्ही।
कीराश्च जगू रक्तं, गणयानि कथं कं कम्।।४।।

ननु वाति मलयवातेऽभीकेव कुसुमवल्ली।
भुक्ता न समदभृङ्गैर्गणयानि कथं कं कम्।।५।।

ते हन्त गता दिवसा, वाटी च समुत्सन्ना।
दावैः स्वगृहोत्पन्नैर्गणयानि कथं कं कम्।।६।।

क्वचिदभ्रतडित्पातैर्झञ्झाभिरमोघाभिः।
नष्टेयमवनिकम्पैर्गणयानि कथं कं कम्।।७।।

वासन्तदिनानां सा स्मृतिरेव समवशिष्टा।
ख्याता च कथङ्कथिकैर्गणयानि कथं कं कम्।।८।।

तदतीतयुगं वाट्याः पुनरेति कदा भूयः।
स्वप्ना नु विधेऽसङ्ख्या गणयानि कथं कं कम्।।९।।

प्रातः ८.४५ वादने
मेहरानगढ़दुर्गः (अतिथिगृहम्), २८.०८.२०१३ ई०

●

इस बगीचे को, अपना अवसर आने पर, किन-किन लोगों ने नहीं लूटा? चाहे वे शत्रु रहे हों चाहे पित्र! किस-किस को गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।१।।

चन्दन की चञ्चल गन्ध से उत्पन्न उन्मादों से अपहृत चेतना वाले (कितने ही) भुजङ्ग तक आये। किस-किसको गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।२।।

आम्रवृक्ष की लसम डाली पर बसेरा लेने वाले मतवाले कोकिल क्या नित्यप्रति नहीं कूके? किस-किसको गिनाऊँ भी तो कैसे?।।३।।

इस कानन में बादल की गड़गड़ाहट से आह्लादित मयूर भी जी भर कर नाचा। शुकों ने सुरीला गायन किया। किस-किस को गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।४।।

मलय-पवन के चलने पर कामोन्मत्ता सी पुष्पवल्ली क्या मतवाले भ्रमरों द्वारा भोगी नहीं गई? किस-किसको गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।५।।

हाय, वे दिन सिरा गये (अब) उजड़ गई बगीची भी अपने ही घर में उत्पन्न हुई दावाग्नि से। किस-किस को गिनाऊँ भी तो कैसे?।।६।।

कभी-कभार तो बादलों के वज्रपातों से (कभी) भयावह तूफानों से (और कभी) भूकम्पो से यह वाटिका नष्ट हो गई। किस-किस को गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।७।।

(अब तो उन) वासन्तिक दिनों की वह स्मृतिमात्र शेषबची है और **कथंकथिकों** (यह कैसे? यह कैसे? इस प्रकार पूछने बाले) द्वारा वर्णित की जाती है। किस-किस को गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।८।।

वाटिका का वह बीता हुआ जमाना फिर कब लौटेगा? हे प्रभो! असंख्य स्वप्न हैं। किस-किसको गिनाऊँ भी तो कैसे? ।।९।।

कथमावयोः सख्यम्

स्थिरत्वे तेऽस्ति सङ्कल्पस्त्वरा मे किन्तु यात्रायाम्।
प्रियात्मन्! सम्भवेच्चिरकालिकं कथमावयोः सख्यम्।।१।।

उदीच्यां त्वं प्रतिष्ठासुः परञ्चाहं गतोऽवाच्याम्।
विचित्रश्चैव विधियोगः कथं भूयान्नु सांमुख्यम्।।२।।

समीक्षायां हि वस्तूनां विभिद्यत एव सन्दृष्टिः।
मदर्थं यन्नयनकज्जलमदस्ते हन्त कालुष्यम्।।३।।

वचनिका या प्रतीकारेऽथ शोके सङ्गताऽऽभाति।
तदेव स्मरजशृङ्गारे प्रतीयत एव पारुष्यम्।।४।।

वियोगः प्रेमनाशात्प्रेमयोगाच्चैव संयोगः।
ततः प्रेमैव शतयत्नैस्समेषां मूलमिह रक्ष्यम्।।५।।

पलाण्डुर्नैव नो लशुनं द्विजानां भोजने ग्राह्यम्।
किमेतैर्यदि भवेत्पापं दुराचरणञ्च तद्भक्ष्यम्।।६।।

न यदि नारायणो हृदये दिवानिशमीक्ष्यते बन्धो!
वृथा तन्मन्दिरे गत्वा तदीयप्रेक्षणासौख्यम्।।७।।

पुरन्ध्रीणामनेकासां पुरा कान्तोऽभवच्चैकः।
कथं मन्येत तत्पत्युर्नु दाम्पत्यं श्रुतिप्रख्यम्।।८।।

अपराह्णे १.०० वादने
मेडतारोड जंक्शनम्, २८.०८.२०१३ ई०

•

तुम्हारा सङ्कल्प है स्थिर होकर बैठे रहने का, किन्तु मेरी त्वरा है यात्रा करने में। प्रियात्मन्! तो फिर हम दोनों का चिरकालिक साहचर्य कैसे संभव हो? ।।१।।

तुम उत्तर दिशा में प्रस्थान करना चाहते हो, परन्तु मैं तो दक्षिण में जाने को उद्यत हूँ। विधियोग ही विचित्र है। हम दोनों का सांमुख्य (आमना-सामना) कैसे हो सकता है? ।।२।।

वस्तुओं की समीक्षा (गुण-दोष-निर्णय) में भी हम दोनों का दृष्टिकोण भिन्न ही है। मेरे लिये जो (रमणी के) नेत्रों का काजल है, ओफ़् वही तुम्हारे लिए कालिख है।।३।।

बातचीत की (हम दोनों की) जो शैली प्रतीकार अथवा शोक-सन्दर्भ में संगत प्रतीत होती है वह कामभावना से उत्पन्न शृङ्गार में 'पारुष्य' प्रतीत होता है।।४।।

प्रेम के नाश से **वियोग** तथा प्रेम के योग से **संयोग** (शृङ्गार) पैदा होता है। अतएव समस्त रसों का स्रोतोभूत वह प्रेम ही सैकड़ों प्रयत्नों से रक्षा करने योग्य है।।५।।

ब्राह्मणों के भोजन में प्याज तथा लहसुन तो कथमपि? ग्राह्य नहीं होना चाहिए (ऐसा मान्य है) परन्तु इनके भक्षण से भला उन्हें क्या परहेज़, पाप या दुराचार ही जिनका (नित्य का) भोजन है।।६।।

बन्धुवर! यदि **नारायण** रात-दिन हृदय में नहीं दिखाई पड़ते हैं तो मन्दिर में जाकर उनके दर्शनों का सुख प्राप्त करना व्यर्थ ही हैं।।७।।

प्राचीनकाल में अनेक महिलाओं का एक ही कान्त (पति) हुआ करता था। तब फिर पति का दाम्पत्य श्रुतिसम्मत कैसे मान लिया जाय? ।।८।।

●

मृत्युरहम्

यमप्रेरितो मृत्युरहम्।
द्वारि-द्वारि भ्रमाम्यहम्।।१।।

आजिगमिषुर्न कोऽपि मया सह।
प्रसह्य तस्माद्धराम्यहम्।।२।।

रौरवमपि भुञ्जानाः स्वगृहे।
त्यक्तुं नेच्छन्तीह गृहम्।।३।।

सप्तत्यशीतिनवतिवयस्काः।
नाऽभिलषन्ति दयितविरहम्।।४।।

किं करवाणि नयानि समं कम्।
कथं यमं तोषयान्यहम्।।५।।

स्वाम्याज्ञापूरका नु भृत्याः।
हृदयं तेषामलंसहम्।।६।।

स्थविरजनन्याः पुरतस्तनयम्।
क्वचिन्नृशंसो हराम्यहम्।।७।।

दुग्धमुखानां पालकपितरम्।
सौनिक इव संहराम्यहम्।।८।।

रतिसुखसारशालभञ्जीनाम्।
सीमन्तं क्षालयाम्यहम्।।९।।

को नु नृशंसे मयि रज्येत।
ततो ऽनभीष्टश्चराम्यहम्।।१०।।

अपराह्णे ५.२० वादने
लालगढ़जंक्शनम्, २८.०८.२०१३ ई०

यम का भेजा हुआ मृत्यु हूँ मैं। दरवाज़े-दरवाज़े घूम रहा हूँ मैं।।१।।

मेरे साथ चल पड़ने के लिए कोई भी इच्छुक नहीं। इसलिए मुझे (जिस किसी को) जबर्दस्ती उठाना पड़ता है।।२।।

अपने घर में जो रौरव नरक तक भोग रहे हैं वे भी उस घर को छोड़ना नहीं चाहते।।३।।

सत्तर के हों, अस्सी के हों,नब्बे के हों या वयस्क (जवान) अपने प्रियजनों (कुटुम्बियों) का विरह कोई नहीं चाहते।।४।।

क्या करूँ? किसको ले जाऊँ (अपने) साथ? (अपने मालिक) यमराज को प्रसन्न करूँ तो कैसे।।५।।

नौकर-चाकर तो स्वामी की आज्ञा के पूरक-मात्र होते हैं। उनका हृदय सब कुछ सहने में समर्थ होता है।।६।।

बूढ़ी माँ के सामने ही उसके पुत्र को, मुझ जैसे नृशंस को हरना पड़ता है।।७।।

दुधमुँहे शिशुओं के पालक पिता को, बहेलिये की तरह मैं मार देता हूँ।।८।।

काय-सुख की आधारभूता शालभञ्जियों (बधुओं) की माँग का सेंदुर पोंछ देता हूँ मैं।।९।।

मुझ जैसे कसाई से भला कौन प्रेम करेगा? इसीलिये 'दुरदुराया' हुआ मैं भागता-फिरता हूँ।।१०।।

•

नमो मे नमः

नामरूपे प्रदत्ते ध्रुवं येन मे।
मूर्तिकाराय तस्मै नमो मे नमः।।१।।

टाङ्किकस्सोऽस्त्यहोऽद्यापि देवोऽस्म्यहम्।
देवकाराय तस्मै नमो मे नमः।।२।।

स्थापिता खेऽवलम्बं विना येन भूः।
सृष्टिकाराय तस्मै नमो मे नमः।।३।।

शैलकल्पं गजं सूक्ष्मनेत्रं व्यधात्।
जीवकाराय तस्मै नमो मे नमः।।४।।

यो हि सिंहाय भूकम्पिनादं ददौ।
कण्ठकाराय तस्मै नमो मे नमः।।५।।

येन वंशी कृता चेतनाकर्षिणी।
छिद्रकाराय तस्मै नमो मे नमः।।६।।

यस्समुच्छिष्टमप्यौषधं सृष्टवान्।
पथ्यकाराय तस्मै नमो मे नमः।।७।।

येन वंशे गजे कल्पितं मौक्तिकम्।
वैकटीकाय तस्मै नमो मे नमः।।८।।

यत्प्रभावादहो सज्जना दुर्जनाः।
हा **निसर्गाय** तस्मै नमो मे नमः।।९।।

रात्रौ ७.०० वादने
हनुमानगढ़म्, २८.०८.२०१३ ई०

•

१. वैकटिकाय इत्यस्य स्थाने छन्दोनुरोधात्, वैकटीकायेति कवित्वस्वातन्त्र्यम्।

जिसने मुझे निश्चित रूप से नाम और रूप दिया उस मूर्तिकार को मेरा बहुशः नमस्कार है।।१।।

आज भी वह (बेचारा) तो टाँकी ही चला रहा है परन्तु (उसी का गढ़ा) मैं **देवता** बन गया हूँ। उस **देवनिर्माता** को मेरा बहुशः नमस्कार है।।२।।

बिना किसी सहारे के ही जिसने अन्तरिक्ष में पृथ्वी को स्थापित कर रखा है उस **सृष्टिकार** को मेरा बहुशः नमन है।।३।।

पहाड़ जैसे हाथी को जिसने नन्हीं आँखों वाला बना दिया उस (विलक्षण) जीवनिर्माता को मेरा बारम्बार नमन है।।४।।

जिसने बबर शेर को धरती कँपा देने वाली **दहाड़** (सिंहनाद) दी, उस (विलक्षण) **कण्ठकार** को मेरा बहुशः नमन है।।५।।

जिसने चेतना को वशीभूत कर देने वाली वंशी का निर्माण किया, उस **छिद्रकार** को मेरा बार-बार नमन है।।६।।

जिसने (मक्खियों) के उच्छिष्ट (वमन) को भी औषध बना दिया उस **पथ्यकार** को मेरा बहुशः नमन है।।७।।

जिसने बाँस और हाथी में (भी) मौक्तिक की सृष्टि कर दी उस **वैकटिक** (जौहरी) को बारम्बार नमन हैं।।८।।

जिसके प्रभाव से ही लोग सज्जन अथवा दुर्जन (पैदा) होते हैं उस **निसर्ग** (भूत-धाता) को नमस्कार है।।९।।

●

विचित्रं व्रतम्

विचित्रं व्रतमहो कल्पितमनेन।
धरित्र्यां तच्छ्रुतं हा हन्त केन।।१।।

जलं नायं पिवति तावत्समुत्थः।
न यावत्कम्पते कश्चिद् भयेन।।२।।

न गृह्णात्येव ससुखं प्रातराशम्।
अनन्दन् प्रातिवेशिकवैशसेन।।३।।

परेषां गाढसुप्तिकथाप्रसङ्गैः।
निशा अत्येत्ययं ननु जागरेण।।४।।

असाध्यं रोगमस्य भणन्ति भिषजः।
अयं ग्रस्तः परोदयकर्कटेन।।५।।

न यावद्धन्त्ययं सत्पुरुषचरितम्।
न माद्यति तावदत्यानन्दनेन।।६।।

स एवाऽपश्यदुरगं हन्त रज्जौ।
कृता यात्रा ऽस्य नेतृत्वेऽथ येन।।७।।

स्वयं पतितो ऽन्यमपि पातयति गर्ते।
श्रुता दृष्टेदृशी निष्ठेह केन।।८।।

युधिष्ठिररामनलशन्तनुरघूणाम्।
तुलयितुं हन्त योग्यो ऽयं नु केन।।९।।

प्रातः ५.४५ वादने
चण्डीगढ़स्टेशन, २९.०८.२०१३ ई०

इसने तो विलक्षण व्रत धारण कर रखा है, जो धरती में भला किसके द्वारा सुना गया है? ।।१।।

यह (सवेरे) उठकर तब तक पानी नहीं पीता जब तक (इसके) भय से कोई काँपने नहीं लगता।।२।।

यह आनन्दपूर्वक तब तक प्रातराश (कलेवा) ग्रहण नहीं करता, जब तक कि पड़ोसी की किसी विपत्ति से आनन्दित नहीं हो उठता।।३।।

दूसरों की गहरी नींद (निश्चिन्त स्वाप) का सन्दर्भ सुनकर यह सारी रात जगते ही जगते बिता देता है (सो नहीं पाता)।।४।।

वैद्य लोग इसके रोग को **असाध्य** बताते हैं क्योंकि यह **पराभ्युदय-कर्कट** (कैंसर) नामक रोग की गिरफ्त में है।।५।।

जब तक यह (किसी) सत्पुरुष का चरित्र-हनन नहीं कर लेता तब तक मस्ती में झूम ही नहीं पाता।।६।।

हरेक उस व्यक्ति ने रस्सी में साँप को ही देखा जिसने इसकी अगुवाई में (कोई) यात्रा की।।७।।

स्वयं तो **पतित** है ही, दूसरों (अनुगतों) को भी गर्त में ढकेलता रहता है, भला ऐसी निष्ठा किसने सुनी है? ।।८।।

युधिष्ठिर, राम, नल, शन्तनु अथवा रघु! इनमें से भला किसके साथ यह तुलने योग्य है? (सर्वथा अतुलनीय ही है यह)।।९।।

●

मर्म विरेचितम्

कथयित्वा कथयित्वा मर्म विरेचितम्।
तेन शरीरं जातं सुधयाऽऽसेचितम्।।१।।

पापं यज्जातं तच्चापि न गोपितम्।
व्यञ्जनया सङ्केतैर्गीतैर्घोषितम्।।२।।

तत्रैव स्यान्मरणं मे यत्रेहितम्।
नैव तदर्थं मोक्षदतीर्थं सेवितम्।।३।।

अज्ञेयञ्च रहस्यं सदा गवेषितम्।
परच्छिद्रसन्धाने न हृन्निवेशितम्।।४।।

चतुष्टयं पुरुषार्थानां पुरुषेहितम्।
शारदार्चयैकया सर्वमवशेषितम्।।५।।

कम्प्रति सम्प्रति जातु मया दुश्चेष्टितम्।
पाटीरे कस्मिन्नहिमाल्यं वेष्टितम्।।६।।

संस्मर्यते न, कस्य यशो मलिनायितम्।
निर्मेघं कस्याकाशं धूमायितम्।।७।।

मनसा वाचा कर्मणा ऽपि सत्प्रेरितम्।
विप्रियमिह दुर्मन्त्रणया न मयेरितम्।।८।।

व्ययीकृतं तस्मादधिकं यत्सञ्चितम्।
रिक्तपाणिना मया जगन्नहि वञ्चितम्।।९।।

प्रातः ७.४० वादने
कुमारहट्टी, २९.०८.२०१३ ई०

●

कह-कह कर (मैंने अपना) मर्म (मन की पीड़ा) बाहर निकाल दिया। उससे मेरा शरीर मानो अमृत से अभिषिक्त हो उठा[1]।।१।।

मुझसे जो पाप हुआ था वह भी नहीं छिपाया। व्यञ्जना वृत्ति से, सङ्केतों से अथवा गीतों के माध्यम से (उसे) घोषित ही कर दिया।।२।।

वहीं पर मेरी मृत्यु हो जहाँ मैं चाहता हूँ (अर्थात् अपनी जन्मभूमि में) उसके लिए मैंने किसी भी मोक्ष देने वाले तीर्थ का आश्रय नहीं किया।।३।।

जो रहस्य अब तक अज्ञेय था, उसी को सदैव खोजता रहा। दूसरों का दोष-पाप खोजने में मन को कत्तई नहीं लगाया।।४।।

मनुष्यों द्वारा आकांक्षित चारों पुरुषार्थों को, एकमात्र शारदा की अर्चना में ही मैंने विलीन कर दिया।।५।।

आज तक कभी भी, किसी के भी प्रति मैंने दुश्चेष्टा नहीं की। किसी भी चन्दन में विषधरों की माला नहीं लपेटी।।६।।

याद नहीं आता कि मैंने किसी की कीर्ति (अपने प्रयत्न से) धूमिल की हो या किसी के निर्मेघ (भाग्या) काश को धूमायित किया हो।।७।।

मन, वचन तथा कर्म से (सबको) सत्प्रेरित ही किया। अपनी दुर्मन्त्रणा से किसी का विप्रिय (अनभल) नहीं होने दिया।।८।।

जो एकत्र किया था, उससे कहीं अधिक ही व्यय कर दिया। खाली हाथ मैंने संसार को ठगा नहीं (सबको कुछ न कुछ दिया ही)।।९।।

●

---

१. स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति।-अभिज्ञानशाकुन्तलम्

कन्यकायां रतिर्मे

नवोऽहं विधिः कन्यकायां रतिर्मे।
कथं नैव भोग्या, यतस्सा कृतिर्मे।।१।।

समेषामहं चेद्धि धर्मोपदेष्टा।
अधर्मेऽपि तद्विद्यते सङ्गतिर्मे।।२।।

महैश्वर्यधन्याऽश्रमेऽहं वसेयम्।
दरिद्रेऽथ कारागृहे, का क्षतिर्मे।।३।।

चतुष्कोटिभक्तौघमुक्तिप्रदातुः।
अहो धिग्विभो! बन्धनैर्दुर्गतिर्मे।।४।।

शतं काष्ठभाण्डे पचन्नस्मि भोज्यम्।
कथं तद्ददाह, क्व याता स्थितिर्मे।।५।।

नवा केयमम्बा प्रतीकारकामा।
अभूद् भीष्मकल्पस्य मृत्य्वन्वितिर्मे।।६।।

क्व तद् वेषभूषादिभिर्हंसनाट्यम्।
क्व तस्मिन्निलीना बकोटाकृतिर्मे।।७।।

क्व घुष्टस्स वैकुण्ठवासाऽभिलाषः।
क्व कारामशानामियं संहतिर्मे।।८।।

अभूवं **यदासूमलादासारामः।**
निराशैव जाताऽधुनेहाऽयतिर्मे।।९।।

रात्रिः २.४४ वादने
इलाहाबाद रे० स्टेशन, ८.०९.२०१३ ई०

•

मैं नया ब्रह्मा हूँ (अपनी ही) कन्या में मेरी रति (भोगाकांक्षा) है। वह (मेरे लिए) भोग्या क्यों नहीं है? क्योंकि मैंने ही तो उसे बनाया है? ।।१।।

यदि मैं सभी का धर्मोपदेष्टा हूँ तो फिर अधर्म के साथ भी मेरी साँठ-गाँठ है ही।।२।।

महैश्वर्य से श्रीमण्डित आश्रम में मैं रहता हूँ। अब यदि दरिद्र कारागार में हूँ तो मेरी क्या क्षति हो गई?।।३।।

चार करोड़ भक्तवृन्दो को मुक्ति प्रदान करने वाले मुझ जैसे की, गिरफ्तारियों से यह दुर्गति हो रही है? आश्चर्य है! धिक्कार है परमेश्वर तुम्हें।।४।।

सैकड़ों बार मैं काठ की हाँडी में भोजन पकाता रहा हूँ। कैसे वह (एक सौ एकवीं बार) जल गई? मेरी स्थिति कहाँ से कहाँ जा पहुँची।।५।।

बदला लेने वाली यह कौन नई **अम्बा** प्रकट हो गई, जो मुझ जैसे **भीष्म** की मृत्यु का कारण बन गई।।६।।

कहाँ वह वेष-भूषादि से सुसज्जित (मेरा) हंसों जैसा नृत्य और कहाँ उस हंस-वेष में छिपा मेरा बगुला-भगत का रूप।।७।।

कहाँ तो वैकुण्ठ में रहने की वह घोषित आकांक्षा और कहाँ जेल के मच्छरों की यह टोली।।८।।

ओफ्! **आसूमल** से मैं **आसाराम** तो बन गया। परन्तु अब (आशा के बजाय) निराशा ही हाथ लग रही है। अब यही है मेरा भविष्य।।९।।

●

तव नयनपाथोनिधिं वन्दे

निमग्नं यत्र कतिधा मे मनस्तं शेवधिं वन्दे।
ससीमञ्चाऽप्यसीमं तव नयनपाथोनिधिं वन्दे।।१।।

यतः प्रभवन्ति विश्वे प्रेमगाथानिम्नगाः सर्वाः।
तिरोहितवाडवाग्निं तं युगलवारांनिधिं वन्दे।।२।।

कियन्तश्चैव नृपवंशा यदग्निक्षुद्रकणिकायाम्।
विना तैलं प्रदग्धास्तं हनूमद्वालधिं वन्दे।।३।।

कुमारिलशङ्करावपि न क्षमौ यद्ग्रन्थिमुद्भेत्तुम्।
तदपरं ब्रह्मतत्त्वं किमपि, मङ्गलसन्निधिं वन्दे।।४।।

उभयतस्सात्त्विकं मध्येऽथ कृष्णं प्रान्तयो रक्तम्।
त्रिदेवाऽधिष्ठितं त्रिगुणं त्रिवर्गाप्तेर्विधिं वन्दे।।५।।

हृषीकाणां समेषां प्रायशस्सम्पाद्यते कार्यम्।
यदेकेनैव तन्नेत्रद्वयं कामेषुधिं वन्दे।।६।।

प्रभावान्नैव पुत्री ब्रह्मणा, पुत्रो न चोर्वश्या।
क्षणं दृष्टौ स्मरान्धाभ्यां तमेकं निरवधिं वन्दे।।७।।

न किं सन्दर्शयत्युन्मीलितं गर्तं गिरिं गगनम्।
निमीलितमप्यहो स्वप्नान् तमहमाध्योषधिं वन्दे।।८।।

इयं खलु नायिकाकरिणीनिबन्धनरज्जुरिति जाने।
महालानञ्च नायकसिन्धुराणां सुपरिधिं वन्दे।।९।।

अपराह्णे १२.१५ वादने
इन्दिरागान्धी एयरपोर्ट, ९.११.२०१३ ई०

•

जिसमें मेरा मन कितनी ही बार डूब गया, उस खज़ाने को नमन करता हूँ। सीमित होते हुए भी जो असीम है उस (तुम्हारे) नेत्ररूपी सागर की वन्दना करता हूँ।।१।।

जिससे संसार में प्रकट होती हैं समस्त प्रेमाख्यान-रूपी नदियाँ, जो वाडवाग्नि को अपने भीतर दबाए बैठा है उस एक जोड़े सागर (नेत्रयुगल) की वन्दना करता हूँ।।२।।

जिसकी आग की छोटी सी चिनगारी में कितने ही राजवंश, बिना तेल के ही प्रदग्ध हो उठे, उस **वायुनन्दन की पूँछ** (जैसे नयनयुगल) की वन्दना करता हूँ ।।३।।

कुमारिल और शङ्कर भी जिसकी गाँठ खोल पाने में समर्थ नहीं हो पाये, किसी अपर (विलक्षण) **ब्रह्म तत्त्व** सरीखे उस मङ्गल-मूल (नेत्र) की वन्दना करता हूँ।।४।।

अपांग भागों में श्वेत, बीच में कृष्ण तथा कोण भागों में लोहित! **त्रिदेवों** (श्वेत-विष्णु, कृष्ण-रुद्र तथा रक्त-ब्रह्मा) से अधिष्ठित, **त्रिगुणात्मक** तथा **त्रिवर्ग** (धर्म, अर्थ तथा काम) की प्राप्ति के स्रोतोभूत नेत्रों की वन्दना करता हूँ।।५।।

जिस **अकेले** से ही प्रायशः समस्त इन्द्रियों का कार्य सम्पन्न कर लिया जाता है, कामदेव के तूणीर-सरीखे उस नेत्र-द्वय की वन्दना करता हूँ।।६।।

कामभाव से अन्धे (विवेकहीन) हुए ब्रह्मा द्वारा जिसके प्रभाववश, क्षण भर के लिए पुत्री (सरस्वती) तथा उर्वशी द्वारा पुत्र (अर्जुन) तक नहीं देखा गया उस एक निरवधि नेत्र की वन्दना करता हूँ।।७।।

खुले रहने पर क्या गर्त, गिरि और गगन को प्रदर्शित नहीं करता? (करता ही है, परन्तु) आश्चर्य है कि बन्द रहने पर भी स्वप्नों को दिखाता है। मनोव्यथाओं की उस ओषधि की वन्दना करता हूँ।।८।।

ये आँखें नायिका-रूपी करिणी को बाँधने की रस्सियाँ हैं–ऐसा मैं समझता हूँ। नायकरूपी महागजों के लिए भी यह प्रशस्त परिधि वाले आलान के समान है। उसकी वन्दना करता हूँ।।९।।

●

निर्गुरु ज्ञातम्

घनेऽवसिते स्वयं वर्षणं शान्तम्।
रहस्यं तन्मया निर्गुरु ज्ञातम्।।१।।

न जातूत्पाट्यते विनतः कदाऽपि।
इदं वानीरमवलोक्याऽवभातम्।।२।।

क्व वा मीलितदृशामटतां नराणाम्।
सरलमार्गे ऽपि नैव विघातजातम्।।३।।

क्षमश्चुम्बितुमहो गगनं शिरोभिः।
स शैलो ऽपेक्षते किं वा प्रवातम्।।४।।

समाधानं किमपि नाऽनेन दत्तम्।
सखे! दर्शय कृपाणं मा निशातम्।।५।।

स्वपिहि रात्रावखिलहितकामनाभिः।
ध्रुवं द्रक्ष्यसि शिवं सौम्यं प्रभातम्।।६।।

यदुपभुक्तं मया हाऽभद्रबुद्ध्या।
दिनं सर्वोत्तमं तन्मे ऽपयातम्।।७।।

न मातुर्वा पितुर्वाऽवाप्तुमिष्टः।
विधास्यति को नु मामिह देवरातम्।।८।।

न मे, नो ते, परेषां चापि येन।
सुखं तत् तस्य वा केनोपजातम्।।९।।

अपराह्णे १२.५४ वादने
इन्दिरागान्धी एयरपोर्ट, ९.११.२०१३ ई०

बादल के नष्ट हो जाने पर बारिश स्वयं समाप्त हो गई। (क्यों समाप्त हो गई?) यह रहस्य मैंने बिना किसी गुरु के ही जान लिया। (क्योंकि कारण के बिना कार्य होता ही नहीं)।।१।।

जो विनम्र होता है उसका कभी भी उच्छेदन नहीं होता है। यह तथ्य **वानीर** (नरकुल के पौधे) को देख कर सुस्पष्ट हो गई।।२।।

आँख मूँद कर पर्यटन करने वाले लोगों को **सरल मार्ग पर** भी भला ठोकर कहाँ नहीं लगती है?।।३।।

जो अपने मस्तकों (शिखरों) से आकाश को भी चूमने में समर्थ हैं, आश्चर्य है! भला वह पर्वत क्या आँधी-बवण्डर से भय खायेगा?।।४।।

इसने (आज तक) कोई समाधान नहीं दिया। दोस्त! **तेज धार वाला छुरा मत दिखाओ।।५।।**

सबकी हितकामनाओं के साथ रात में शयन करो। सच मानो, मंगलमय तथा सुहावना प्रभात देखोगे।।६।।

हाय! जिसे मैंने **अभद्र** (अकल्याणकर) मान कर भोगा वही मेरा **सर्वोत्तम** दिन था, जो बीत गया।।७।।

अपनाने के लिए न मैं माताश्री को अभीष्ट हूँ, न ही पिताश्री को। अब मुझ (शुनः शेप) को **देवरात** कौन बनायेगा? ।।८।।

जिससे न मुझे, न तुम्हें, न ही औरों को सुख मिला **वही सुख** उसको (भी) किससे मिल पाया? ।।९।।

●

कथयन्ति ते सगर्वम्

सम्पादिता मया भो निर्विघ्नजीवयात्रा।
कथयन्ति ते सगर्वं कतिचित्पदानि गत्वा।।१।।

ज्ञातो न वा यदादिः परमार्थतो न चान्तः।
जीवन्ति कालमपि तं मुष्ट्यैव ते गृहीत्वा।।२।।

अजरोऽमरोऽस्मि नूनं प्रतियुगमहोऽस्मि जातः।
सिद्धं रहस्यमेतत्, पितृशृङ्खलां विदित्वा।।३।।

द्वित्राः पराजया वा कश्चिज्जयोऽथवैकः।
स्वप्नाश्च पञ्चषा वा, याम्येतदेव हृत्वा।।४।।

केयं मुधोपलब्धिः कालेऽप्यमेयपरिधौ।
उत्कन्धरोऽस्ति मूढः किं किं न हन्त मत्वा।।५।।

ज्ञानं हि जायते नो यावत्स्वशक्तिसीम्नः।
प्रविकत्थते न को वा तावद् वृथा भणित्वा।।६।।

वाप्येव तस्य सिन्धुर्दृष्टा न येन वाऽसौ।
वापी तिमिङ्गिलानां ननु सिन्धुरपि स तीर्त्वा।।७।।

स्यादन्यथा कथं नो स्वमहोच्चताऽभिमानः।
लघुतामवैति करभः पर्वतपदं नु वृत्वा।।८।।

केचिद्यतीभवन्तोऽप्युपहास्यतां श्रयन्ते।
जायन्त एव केचिद् यतिनोऽशुभानि रिक्त्वा।।९।।

अपराह्णे द्विवादने
इन्दिरागान्धी एयरपोर्ट, दिल्ली, ९.११.२०१३ ई०

कुछ ही डग आगे बढ़कर वे सीना तान कर कहने लगे हैं कि भैया! मैंने अपनी जिन्दगी की यात्रा निर्विघ्न काट ली।।१।।

जिसका **प्रारम्भ** तक ज्ञात नहीं है और परमार्थतः (सचमुच) जिसका अन्त भी अज्ञात ही है उस **काल** को भी वे मुट्ठी में बाँध कर जी रहे हैं।।२।।

मैं अजर एवं अमर हूँ। निश्चित रूप से प्रत्येक युग में मैं पैदा होता रहा हूँ। यह रहस्य तो **पितृश्रृङ्खला** के ज्ञान से ही (अर्थात् प्रत्येक पुत्र का कोई जन्मदाता पिता होता है) सिद्ध है।।३।।

दो-तीन हार अथवा कोई एक जीत! और पाँच-छ (पूर्ण हुए) सपने! बस यही इतना लेकर (परलोक) प्रस्थान करूँगा।।४।।

अमेय परिधि वाले काल-प्रवाह में यह झूठी उपलब्धि भला कैसी? लेकिन मूर्ख व्यक्ति उसी उपलब्धि को क्या-क्या नहीं मानकर कन्धे उचकाता है (शेखी बघारता है)।।।५।।

अपनी सामर्थ्य-सीमा से जब तक ज्ञान उदित नहीं होता है तब तक भला कौन झूठी बयानबाजी कर डींगे नहीं हाँकता है? ।।६।।

जिसने समुद्र को देखा ही नहीं है उसके लिए वावड़ी ही उसका समुद्र है। परन्तु **तिमिङ्गिलों** (ह्वेल मत्स्यों) के लिए (निरन्तर) पार करते रहने के कारण, वह समुद्र भी बावड़ी जैसा ही है।।७।।

जब तक सेर को सवासेर नहीं मिलता, तब तक अपने ऊँचे होने का अभिमान क्यों न हो? पहाड़ के नीचे पहुँचकर ही ऊँट को अपनी लघुता का बोध होता है।।८।।

कुछ हैं कि बैरागी का चोला धारण करते हुए भी उपहास के पात्र बन जाते हैं। परन्तु और हैं कि दुराचारों से पिण्ड छुड़ा कर ही यति के रूप में प्रकट होते हैं (लोक में)।।९।।

•

यतिष्येऽधुना

प्रियोऽप्रत्यभिज्ञात एवाऽसि जातः।
यतिष्येऽधुना तत्त्वतस्त्वां विवेक्तुम्।।१।।

प्रयत्नैर्महद्भिः कृतं तन्नु हर्म्यम्।
उपक्राम्यसि त्वं यदेवं विभेत्तुम्।।२।।

इयेष स्वगर्भेऽवितुं चूतबीजम्।
घटीभूय मृत्साऽक्षमा तन्निषेक्तुम्।।३।।

रुरोह क्षणेनाऽभ्रमुद्धूतधूमः।
घनीभूय भूयोऽवतीर्णः स्वहेतुम्।।४।।

न वित्तैर्न खड्गैर्न चातङ्कभारैः।
धरा शक्यते किन्तु शीलेन जेतुम्।।५।।

अहो भग्नजङ्घो रणे धार्तराष्ट्रः।
रथश्चैति कङ्क[1] द्युलोकं हि नेतुम्।।६।।

यदि स्वस्थतामेति हास्येन लोकः।
हसाऽत्मोपरि क्लिष्टपापानि रेक्तुम्।।७।।

प्रदत्तं मनः प्रीतिबन्धोत्सवाय।
सखे! युङ्ग्ध तन्नैव रोष्टुं न खेत्तुम्।।८।।

ध्रुवं निष्फलं मत्कवित्त्वं नु जातम्।
ममैवानुजा नेच्छवो मामुपैतुम्।।९।।

अपराह्णे १.४३ वादने
शिमला-आवासः, १३.११.२०१३ ई०

●

---

१. विराटाश्रये युधिष्ठिरः कङ्कनाम्ना वसतिञ्चकार।

बिना किसी पूर्व पहचान के ही (तुम मेरे) प्रिय (अजीज़) बन गए हो। अब मैं प्रयत्न करूँगा, जड़-मूल सहित तुम्हें जानने का।।१।।

बड़े प्रयत्नों से वह मकान मैंने बनाया है जिसे तुम यूँ (अकारण) ध्वस्त करने पर आमादा हो।।२।।

मिट्टी ने आम के बीज को तो अपने गर्भ में सँजोना चाहा। परन्तु घट बनकर उसे सींच पाने में वही समर्थ नहीं है।।३।।

उड़ता हुआ धुआँ क्षण भर में ही आकाश (तो) छूने लगा। परन्तु (ऊँचाई पर पहुँच) बादल बनकर पुनः अपने हेतु (जलाशय) तक उतर आया।।४।।

यह पृथ्वी न धन से, न तलवार (के बल) से और न ही आतंक के जोर से जीती जा सकती है। किन्तु हाँ, शील अर्थात् आचरण-मात्र से जीती जा सकती है।।५।।

आश्चर्य है कि धृतराष्ट्र का पुत्र दुर्योधन तो समराङ्गण में जाँघ तुड़वा बैठा है और (उधर दूसरी ओर) कङ्क (अर्थात् युधिष्ठिर) को स्वर्गलोक ले जाने के लिए रथ आ रहा है।।६।।

यदि हँसने से ही समाज स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है (जैसा कि लोग कहते हैं) तो फिर हँसो अपने (ही) ऊपर (अपने) कठिन पापों के विरेचन के लिए।।७।।

मैंने (अपना) मन प्रेम-प्यार के उछाह के लिए सौंपा है। मेरे भीत! उसे भूनने या दुखाने का यत्न मत करो।।८।।

निश्चित रूप से मेरा कवित्व फलहीन हो चला है, क्योंकि मेरे ही छोटे भाई मेरा अनुसरण करने के इच्छुक नहीं हैं।।९।।

•

केवलं वचसा

कृताः शास्त्रार्थसंसदि कान्दिशीकास्ते बुधम्मन्याः।
भवद्भिर्लीलयैवेति प्रबुद्धं, **केवलं वचसा**।।१।।

सतां धुर्यो धनी धनिवत्तमानां धीमतां धनिकः।
भवानग्रेसरो विद्यावतां, ननु **केवलं वचसा**।।२।।

स्वयं श्री **राहुलो गान्धी** भवन्तं प्रीतिभोजार्थम्।
निजावासे निमन्त्रितवान् तदपि, ननु **केवलं वचसा**।।३।।

समाहूतो भवान् प्रस्तोतुमनुसन्धानपत्रं स्वम्।
हवाई-हाइडिलबर्गादहो, ननु **केवलं वचसा**।।४।।

अशिक्षत **सोनिया** हिन्दीमथो गीतां भवत्कृपया।
भवन्तं भणति पण्डितजीति, भवतः **केवलं वचसा**।।५।।

वदान्यत्वञ्च कारुण्यं सदाचारादिकं भवताम्।
श्रुतं नो कैः समाजे नित्यशो, ननु **केवलं वचसा**।।६।।

सुता दलितेन सह याता मुखे ते कज्जलं लिप्त्वा।
भवाञ्जातिव्यवस्थाया विरोधी, **केवलं वचसा**।।७।।

निषिद्धो नैव कतिधा हन्त पद्मश्रीपुरस्कारः।
असन्तुष्टेन भवता कर्णितं, ननु **केवलं वचसा**।।८।।

इयं जागर्ति जिह्वा यावदास्ये कर्तरीकल्पा।
प्रतिष्ठामुपगतः कां कां न वा, ननु **केवलं वचसा**।।९।।

सन्ध्या ५.३० वादने
हमीरपुरयात्रायाम्, १४.११.२०१३ ई०

●

अपने को विद्वान् मानने वाले वे सारे पण्डित आपके द्वारा खेल-खेल ही में शास्त्रार्थ-सभा में **कान्दिशीक** (बगल में झाँकने वाले) बना दिये गये (अर्थात् खदेड़ दिये गये। यह मैंने बस आपके बयान से ही जाना।।१।।

आप विद्वानों में अग्रेसर, सज्जनों में अग्रगण्य, धन-समृद्धों में सर्वोपरि तथा बुद्धिमानों में वरेण्य हैं। यह सब भी बस आपकी बयानबाजी से ही मैं जान सका।।२।।

अपने आवास पर आयोजित प्रीतिभोज में शामिल होने के लिये **श्री राहुल गान्धी** ने स्वयमेव आपको आमन्त्रित किया था–यह बात भी बस आपकी बाग्झरी से ज्ञात हुई।।३।।

अपना अनुसन्धान-पत्र (रिसर्चपेपर) प्रस्तुत करने के लिये आप (अमेरिका के) हवाई तथा (जर्मनी के) हाइडिलवर्ग विश्वविद्यालय से बुलाये गये थे–यह भी बस आपकी बाणी से ही ज्ञात हुआ।।४।।

आपकी ही कृपा से **सोनिया जी** हिन्दी तथा गीता का ज्ञान प्राप्त कर सकीं। वह आपको **पण्डित जी** सम्बोधित करती थीं–यह सब आपके ही बयान से ज्ञात हुआ।।५।।

आपकी दानशीलता, आपकी परदुःखकातरता और आपके सदाचारादि गुण समाज में किन लोगोंने नित्यशः नहीं सुने? परन्तु केवल आपके वाग्विलास से।।६।।

बेटी आपके मुँह में कालिख पोत कर दलित युवा के साथ भाग निकली (आपके विरोध के बावजूद) गो कि आप (नेता के रूप में) जाति-व्यवस्था के विरोधी हैं–बस वाणी-मात्र से।।७।।

(शासन के व्यवहार से) असन्तुष्ट हुए आपने कितनी बार **पद्मश्री** पुरस्कार लेने से मना नहीं कर दिया? मैंने सुना यह। परन्तु बस आपके ही मुँह से।।८।।

जब तक कैंचीसरीखी यह जीभ (आपके) मुँह में सक्रिय है तब तक आप किस-किस प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त कर लेंगे? बस, अपने बयानमात्र से! ।।९।।

●

महानायकत्वं न वाऽऽप्तम्

हृदि ज्ञानसिन्धुं पुषित्वा कृतं किम्।
अहो निष्फलं मर्त्यजन्मैव जातम्।।१।।

मुहुश्चुम्बनाऽलिङ्गनैर्गुप्तभोगैः ।
शताब्द्या महानायकत्वं न वाऽऽप्तम्।।२।।

मुधा यापिता लक्षहोरा अधीतौ।
अवाप्यापि सर्वज्ञतां न प्रभातम्।।३।।

प्रदत्ताः स्वराष्ट्राय धुर्याः सहस्रम्।
तथाप्यन्धकारात्पृथक्त्वं न जातम्।।४।।

कथं क्रीकटे ऽभूद्रतिर्नैव बाल्यात्।
यतो जीवनं **राष्ट्ररत्नं** न भातम्।।५।।

वृथा साधना हन्त सारस्वती सा।
न यद्रत्नतामूल्यमद्याऽवदातम्।।६।।

कणोऽस्मि ध्रुवं भारतीमृत्तिकायाः।
न तत्किञ्चिदूनं नु रत्नाद् विभातम्।।७।।

अहो जन्मदा काचिदासीन्ममाऽपि।
प्रदत्तं नु यस्यै मया ऽस्तित्वजातम्।।८।।

अदृष्टं न- मन्ये ऽधुना प्रागधीनम्।
स्वलालाटिकानां प्रतापादवाप्तम्।।९।।

रात्रौ ८.२५ वादने
शिमलावासः, १६.११.२०१३ ई०

•

हृदय में ज्ञान का सागर सुरक्षित रखकर क्या किया मैंने? ओह! मनुष्य का जन्म लेना ही निष्फल हो गया।।१।।

बार-बार (सुन्दरियों के) चुम्बनों, आलिङ्गनों एवं गुप्त (चोरी-छिपे) भोगों द्वारा इस शताब्दी की **महानायकता** तो नहीं प्राप्त कर सका न।।२।।

व्यर्थ में ही स्वाध्याय में लाखों घण्टे गँवा दिये। **सर्वज्ञता** प्राप्त करके भी तो भाग्य नहीं चमक पाया?।।३।।

अपने राष्ट्र को हजारों **धुर्य** (आई०ए०एस०पी०सी०एस० अधिकारी) प्रदान किये। फिर भी अँधेरे (अवनति) से पिण्ड नहीं छूट पाया।।४।।

(अब सोचता हूँ कि) बचपन से ही (मेरी भी) क्रिकेट के प्रति ही आसक्ति क्यों नहीं हुई? तभी तो जीवन **राष्ट्ररत्न** (भारतरत्न) नहीं बन पाया।।५।।

वह विलक्षण सारस्वत-साधना तो व्यर्थ ही हुई कि जिसके रत्न होने का मूल्य आज भी कोई नहीं जानता (यानी विद्वत्ता का समाज में कोई मूल्य ही नहीं–दरोगा और लेखपाल के आगे भी)।।६।।

निश्चय ही मैं भारत की माटी का एक कणमात्र हूँ। वह कण भी किसी हीरे-जवाहर से तिलमात्र भी कम नहीं है।।७।।

हन्त! मेरी भी तो जन्म देने वाली कोई माँ थी, जिसके नाम मैंने अपना अस्तित्व ही अर्पित कर दिया (**अभिराज राजेन्द्र** बनकर)।।८।।

अब तो मैं **अदृष्ट** (अनदेखे भाग्य) को भी पूर्वजन्म से सम्बद्ध नहीं मानता (**अदृष्ट** वही है जो इसी जन्म में) अपने लालाटिकों (कमाण्डोज़) की कृपा से प्राप्त होता है।।९।।

•

भारतयत्नोऽहम्

मामपि पश्यन्तु गुणैकरसाः।
कश्चित्खलु भारतयत्नोऽहम्।।१।।

नोन्मादैर्नो वा दुराग्रहैः।
वैशिष्ट्यैर्भारतयत्नोऽहम् ।।२।।

अवदानं नो मे काष्ठमयम्।
चिन्मयो हि भारतयत्नो ऽहम्।।३।।

क्षणजीवी नो त्रिदशावधिकः।
शाश्वतो हि भारतयत्नोऽहम्।।४।।

प्रतिभालोकाः सृष्टा नु मयाऽ।
परवेधा भारतयत्नो ऽहम्।।५।।

आप्रलयं स्थास्यति सितं यशः।
सारस्वतभारतयत्नो ऽहम्।।६।।

राष्ट्रस्य निर्मिता धुरन्धराः।
कौटिल्यजभारतयत्नो ऽहम्।।७।।

आदित्येष्वहं न काचनिभः।
आत्माभो भारतयत्नोऽहम्।।८।।

लेखन्या जातोऽजरो ऽमरो।
निर्घुष्टो भारतरत्नो ऽहम्।।९।।

प्रातः ६.३० वादने
शिमलावासः, १७.११.२०१३ ई०

•

एकमात्र गुणों को ही परखने में जिनकी रुचि है, वे लोग मुझे भी तो देखें। मैं भी कोई **भारत-यत्न** हूँ।।१।।

(पिछलग्गुओं के) उन्मादों (होहल्लों) अथवा दुराग्रहों से नहीं (प्रत्युत) अपने वैशिष्ट्यों से ही मैं **भारतयत्न** हूँ।।२।।

मेरा अवदान काष्ठमय (क्रिकेटादिका) नहीं है। मैं चिन्मय **भारत-यत्न** हूँ।।३।।

मैं क्षण-जीवी (एक दशक, दो दशक का कलाकार नहीं) नहीं प्रत्युत देवताओं जैसा अजर-अमर तथा शाश्वत **भारत-यत्न** हूँ।।४।।

मैंने (एक प्राध्यापक के रूप में) प्रतिभाओं के (अनन्त) आलोक गढ़े हैं। मैं दूसरे ब्रह्मा के समान **भारत-यत्न** हूँ।।५।।

मेरा स्थिर यश प्रलय-पर्यन्त अस्तित्व में रहेगा (क्योंकि) मैं सारस्वत **भारत-यत्न** हूँ।।६।।

राष्ट्र की धुरी को धारण करने वाले (अधिकारियों) को मैंने निर्मित किया है। कौटिल्य का वंशधर **भारत-यत्न** हूँ।।७।।

दीप्ति बिखेरने वाले पदार्थों (आदित्यों) में मैं काच-सरीखा नहीं हूँ। मैं आत्मप्रभा-सम्पन्न **भारत-यत्न** हूँ।।८।।

अपनी लेखनी से मैं अजर-अमर हो चला हूँ। बस घोषणा भर नहीं हुई है (अन्यथा) **भारत-रत्न** हूँ मैं।।९।।

●

वृथा कृकलासता

खरस्सम्बोध्यते ऽसौ वरभ्राता।
भुजङ्गाः स्वयं विषवैद्या नु जाताः।।१।।

बहुलकक्षं गृहं ननु राजनीतिः।
क्वचित्पत्नी स्नुषा पुत्रोऽथ माता।।२।।

स्वयं नो ध्वंसते चेद् ध्वंसयाऽमुम्।
धियेंत्यध्वनि कृताः प्रतिपदविघाताः।।३।।

मिलत्यासन्दिका यदि कोलमैत्र्या।
त्रपा मलभक्षणेष्वपि नोऽवभाता।।४।।

मुलायममोदिमायाराहुलाश्च ।
चतुर्वर्णा इमे ऽभिनवाः प्रजाताः।।५।।

इमे वर्णाः स्वयं जगदीशसृष्टाः।
समे गुणकर्मशः स्वजने ऽवदाताः।।६।।

निशाचरतां गता निर्वाचने ते।
रजन्यो ऽप्यद्य नेतॄणां प्रभाताः।।७।।

क्वचित्**त्वामादमी** राज्याय यतते।
क्वचिद् **वृद्धाऽपि** तरुणीत्वं प्रयाता।।८।।

क्वचिट्ठगिनी स्वपर्यायाय खिन्ना।
वृथा कृकलासता सिध्यति निशाता।।९।।

प्रातः ७.५३ वादने
शिमलावासः, १७.११.२०१३ ई०

•

(इस युग में) वह गधा **बड़ा भाई** सम्बोधित किया जा रहा है। (जहरीले) साँप खुद-ब-खुद विषवैद्य बन गए हैं।।१।।

राजनीति अनेक कमरों वाला घर बन गई है। किसी में पत्नी है तो किसी में पुत्रवधू, किसी में बेटा है तो किसी में माँ।।२।।

यदि अपने आप ध्वस्त नहीं होता है तो उसे विध्वस्त करो। इस बुद्धि से (अब किसी के) मार्ग में रोड़े अटकाए जा रहे हैं।।३।।

यदि सुअरों से भी मित्रता करके कुर्सी मिल रही है तो फिर (उन सूकरों की खुशी के लिए) मैला खाने में भी लज्जा नहीं है।।४।।

अब ये (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के स्थान पर) **नये चार वर्ण** अस्तित्व में आये हैं–मुलायम, मोदी, मायावती और राहुल।।५।।

ये चारों वर्ण स्वयं परमेश्वर द्वारा बनाए गये हैं। ये चारों ही समाज में अपने **गुणों** एवं **कर्मों** से प्रख्यात हैं।।६।।

जब से वे लोग निर्वाचन में (रात-रात भर घूमने के कारण) **निशाचरता** को प्राप्त हो गये है तबसे अब रातें भी नेताओं के लिए प्रभात ही बन गईं हैं।।७।।

कहीं तो **आम आदमी** राज्य (शासन) के लिए प्रयत्न कर रहा है और कहीं बुढ़िया भी (उसी कुर्सी की खातिर) तरुणी बन गई है।।८।।

कहीं पर **ठगिनी** पुनः अपनी **ओसरी** (बारी) के लिए सन्तप्त है जिसकी सिद्ध हो चुकी है तीखी गिरगिट जैसी रंग बदलने की कला।।९।।

●

यदाऽभूत्पार्थिवो भोजः

धराऽसीत् सर्वतस्सुखिनी **यदाऽभूत्पार्थिवो भोजः**।
कलाधारा ऽभवद्धारा यदा ऽभूत्पार्थिवो भोजः।।१।।

न दैन्यं शातनं क्वापि क्वचिन्नो वैरमात्सर्यम्।
बभौ कौटुम्बिकं सौख्यं यदा **ऽभूत्पार्थिवो भोजः**।।२।।

न पुर्यां कोऽपि वैधेयः प्रयोक्ता चापि दुर्वचसाम्।
कुविन्दा अपि महाकवयो यदाऽ**ऽभूत्पार्थिवो भोजः**।।३।।

अहो **गाङ्गेयदेवो** ऽसौ गतो गर्तं पराभूतः।
विलापी **तैलपो** जातो **यदाऽभूत्पार्थिवोभोजः**।।४।।

चुलुकजाता नु **चालुक्या** नृपा अन्वर्थनामानः।
सपत्नः कोऽपि नो ददृशे यदा**ऽभूत्पार्थिवो भोजः**।।५।।

चिरं कमलालया कोषे स्फुरच्छक्तिश्च कोदण्डे।
मुखे सा शारदा रेमे **यदाऽभूत्पार्थिवो भोजः**।।६।।

सितज्योत्स्नाऽपि साशङ्कं प्रविष्टा मालवोर्व्यां सा।
स्फुरत्सितकीर्तिभीताऽसौ **यदाऽभूत्पार्थिवोभोजः**।।७।।

जनानां हृत्सु **बोधार्को**, **ग्रहार्को** व्योम्नि, **भूपार्कः**।
भुवि प्रचकाशिरे युगपत् **यदाऽभूत्पार्थिवो भोजः**।।८।।

अपराह्णे ६.१२ वादने
गढ़ीमानिकपुरम् (कड़ा), ४.१२.२०१३ ई०

•

जब भोजदेव शासक थे तब पृथ्वी चारों ओर से सुख-सम्पन्न थी। जब राजा भोज शासक थे तब धारानगरी (राजधानी) कलाओं का आधार बन गई थी।।१।।

न कहीं दारिद्र्य था, न सताने की घटना। कहीं पर भी वैर या मात्सर्य नहीं था। जब राजा भोज शासक थे तब कौटुम्बिक सौख्य (सर्वत्र) विद्यमान था।।२।।

न राजधानी में कोई मूर्ख था, न ही दुर्वचनों का प्रयोक्ता। जब राजा भोज शासक थे तब कुविन्द (जुलाहे) भी महाकवि होते थे।।३।।

ओफ् वह (चेदिनरेश) **गाङ्गेयदेव** भी (भोज से) पराजित होकर गर्त में पड़ा था। जब राजा भोज शासक थे तब तैलप भी **विलापी** बन गया था।।४।।

(ब्रह्मा के) चुलुक-जल से उत्पन्न होने वाले (गुजरात के) चालुक्य नरेश भी सचमुच अन्वर्थनामा बन गये थे (अर्थात् चुल्लू की तरह सिमट गये थे) जब राजा भोज शासक थे तब (उनका) कोई **सपत्न** (वैरी) दीखता ही नहीं था।।५।।

जब राजा भोज शासक ते तब चिरकाल तक उनके कोष में कमलालया (लक्ष्मी) कोदण्ड (धनुष्) में संस्फुरित शक्ति तथा मुखमण्डल में सरस्वती रमण करती रहीं।।६।।

जब राजा भोज शासक थे तो **उनकी देदीप्यमान कीर्ति से भयभीत वह दूधिया चाँदनी भी** मालवा की धरती में (जो भोज की कीर्ति से स्वतः प्रकाशित थी) शङ्कित मन से प्रवेश करती थी।।७।।

जब राजा भोज शासक थे तब जनता के हृदयों में **ज्ञान का सूर्य**, आकाश में **ग्रहमण्डल का सूर्य** तथा पृथ्वी पर **भूपतियों का सूर्य** (स्वयं भोजदेव) एक ही साथ प्रकाशित हो रहे थे।।८।।

•

परिचयैरलं बन्धो!!

कारागृहे कीदृशाः सम्प्रति।
तत्परिचयैरलं बन्धो!!।।१।।

कोऽस्ति भवानह**माशारामः**।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।२।।

कस्त्वं? कण्डा **गोपालोऽहम्**।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।३।।

कोऽस्ति भवान्? **नन्वमरमणिरहम्**।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।४।।

कौ नु युवां? **तलवार**दम्पती।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।५।।

कस्त्वमहं **सुरेशकलमाडी**।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।६।।

तेजःपाल! तहलकाविक्रम।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।७।।

न्यायाधिपते! त्वमपि **गाङ्गुलिन्**।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।८।।

त्वमपि गृहीतो **नारायण** भोः।
कथमिह? किं भणानि बन्धो।।९।।

सन्ध्या सप्तवादने
उन्नाव रेलस्थानके, ४.१२.२०१३ ई०

•

इस समय कैसे-कैसे लोग कारागार में हैं? मेरे भाई! रहने दो उनका परिचय।।१।।

आप कौन हैं? मैं आशाराम हूँ। यहाँ कैसे? क्या बताऊँ भैया? ।।२।।

आप कौन? मैं गोपाल कण्डा हूँ। यहाँ कैसे? क्या बताऊँ भैया? ।।३।।

आप कौन हैं? मैं ही हूँ अमरमणि! आप यहाँ कैसे? क्या कहूँ मेरे भाई? ।।४।।

आप दोनों कौन हैं? हम तलवार-दम्पती हैं। अप यहाँ कैसे? क्या बताऊँ बिरादर।।५।।

आप कौन? मैं सुरेश कलमाड़ी हूँ (तो फिर) यहाँ कैसे? क्या बताऊँ बन्धो? ।।६।।

तहलका मामले में कमाल दिखाने वाले **तेजपाल जी** ? आप यहाँ कैसे? क्या बताऊँ भैया? ।।७।।

न्यायमूर्ति **गाङ्गुली जी**! आप भी? यहाँ (जैल में) कैसे? क्या बताऊँ भाया?।।८।।

नारायण! आप भी पकड़ में हैं? यहाँ कैसे? क्या बताऊँ भैया।।९।।

●

नो क्वचित्

तावके शब्दशास्त्रे जगन्नाथ हे।
मत्कृते नो **चतुर्थी विभक्तिः** क्वचित्।।१।।

सन्ति कोषे व्युपेक्षादिशब्दाः समे।
मत्कृते किन्तु नो **तेऽनुरक्तिः** क्वचित्।।२।।

कीदृशीयं कृपा दीनबन्धोऽनिशम्।
बाधते क्वापि दैन्यं, **विपत्तिः** क्वचित्।।३।।

किन्न जीवन्ति सर्वे ममालम्बनैः।
नेत्रयोरश्रुधाराऽ**प्यशक्तिः** क्वचित्।।४।।

दुर्गुणा मे समे भावयन्ति प्रभुम्।
अन्तिकं किन्तु नोपैति **भक्तिः** क्वचित्।।५।।

रोदनैरेव वीतं जरज्जीवनम्।
सार्थिका नैव जाता **प्रपत्तिः** क्वचित्।।६।।

वाहनारोहिणस्सारमेया अपि।
मादृशां निश्चिता नैव **पङ्क्तिः** क्वचित्।।७।।

त्वं महिष्ठोऽसि यद्वा लिपिर्वैधसी?
मानसान्नापयातीति **भ्रान्तिः** क्वचित्।।८।।

स्वीयरूपं समाख्याहि सत्यं प्रभो!
तुष्टिदा दर्शनानां न **युक्तिः** क्वचित्।।९।।

प्रातः ८.३० वादने
शिमलावासः, ९.१२.२०१३ ई०

हे जगन्नाथ! आपके व्याकरणशास्त्र में (शायद) मेरे लिये **चतुर्थी विभक्ति** कहीं है ही नहीं।।१।।

आपके शब्दकोशों में **व्युपेक्षा** आदि सारे शब्द तो हैं। परन्तु मेरे लिए **अनुरक्ति** शब्द कहीं भी नहीं है।।२।।

हे दीनबन्धु! मुझ पर रात-दिन यह कैसी कृपा है आपकी कि कभी **दैन्य** तो कभी **विपत्ति** मुझे पीड़ित करती ही रहती है।।३।।

क्या मेरे ही आसरे ये सब नहीं जी रहे हैं? कौन हैं वे? आँखों में अश्रुधारा तथा कहीं असमर्थता।।४।।

मेरे सारे दुर्गुण तो (आप) प्रभु को प्रभावित करते हैं? परन्तु मेरी **भक्ति** आपके पास तक कहीं फटक भी नहीं पाती?।।५।।

यह जीर्ण-शीर्ण जीवन रोते ही रोते बीत गया। लेकिन मेरी **प्रपत्ति** (आत्मार्पण) कहीं भी सार्थक नहीं हो पाई ।।६।।

कुत्ते भी कारों में यात्रा कर रहे हैं। परन्तु मेरे जैसों की कोई भी पंक्ति निश्चित नहीं हो पाई है।।७।।

प्रभो! आप सबसे महान् हैं अथवा ब्रह्मा की लिखी **ललाट-लिपि?** यही भ्रान्ति मन से कभी भी निकल नहीं पा रही है।।८।।

हे नाथ! अपना वास्तविक स्वरूप तो प्रकट कीजिए। दर्शनग्रन्थों में दी गई (आपके निसर्ग से जुड़ी) युक्तियाँ कहीं भी परितोष देने वाली नहीं हैं।।९।।

•

अपार्थकं युद्धं कृतम्

एकान्तमास्थाय क्वचित्कस्मान्न हरिनाम स्मृतम्।
दुर्भाग्यमासीन्मामकं यदपार्थकं युद्धं कृतम्।।१।।

पिचुमन्दबदरीखदिरशाखोटकशमीजननक्षमा।
मरुभूरियं ननु जानतापि रसालवनमुपकल्पितम्।।२।।

एतन्मुखे दशनद्वयी किल कालकूटरसाञ्चिता।
ज्ञात्वाऽपि सम्यगिदं गृहे फणिभृत्कलत्रमुपाश्रितम्।।३।।

कामन्दकं कौटिल्यमथ विदुरं मनुं पठताऽप्यहो।
कस्मान्मया रमणीमनो मनसा निजेन समीक्षितम्।।४।।

मुषिते गृहे जागरणलाभो को नु सम्प्रति चिन्तये।
कस्मान्न तत्क्षणमेव नयनं हा विधे! प्रोन्मीलितम्।।५।।

सम्प्रत्यवैमि यथा मयाऽतीते समाचरिता त्रुटिः।
दुःखं यथा न्वभिनन्दितं काम्यं सुखञ्च कदर्थितम्।।६।।

इयती विधातः का नु भविता जीवनस्य तु लाञ्छना।
घस्मरनिदाघदिने गते यदिदं सरोवरमीक्षितम्।।७।।

औचित्यसीमानस्समे मन्ये तदैव खिलीकृताः।
पिककण्ठमाधुर्यं यदा मौकुलिकुलैर्नु परीक्षितम्।।८।।

पूर्वाह्णे ११.३० वादने
सोलनम्, २७.१२.२०१३ ई०

•

कहीं एकान्त की शरण लेकर क्यों नहीं मैंने **हरिनाम** का स्मरण किया? यह मेरा दुर्भाग्य ही था कि झूठी लड़ाइयाँ लड़ता रहा (जीवन में)।।१।।

यह मरुभूमि केवल बैर, नीम, खैर, शाखोटक और शमी को ही पैदा करने में समर्थ है। यह जानते हुए भी मैंने यहाँ **अमराई** (आम्रवन) विकसित करने का सपना देखा।।२।।

कालकूट (ज़हर) के रस में भींगी दो द़ाढ़ें हैं इसके मुँह में, यह अच्छी तरह से जानते हुए भी मैंने इस **नागिन** को (घर में) पाला।।३।।

कामन्दक, कौटिल्य, विदुर तथा मनु महाराज को पढ़ते हुए भी आश्चर्य है कि मैंने रमणी के मन को **अपने ही मन के समान** (सरल, मधुर) समझा।।४।।

अब जाकर सोच रहा हूँ कि जब घर लुट ही गया तो फिर जागने का क्या लाभ? हे परमेश्वर! उस समय ही (जब लुट रहा था) आँख क्यों नहीं खोल सका? ।।५।।

बीते दिनों में जो गल्तियाँ मैंने की आज उन्हें समझ रहा हूँ। जिस तरह से मैंने (त्याज्य) दुःखों का अभिनन्दन किया और अभीष्ट सुखों का तिरस्कार किया।।६।।

हे विधाता! अब इससे अधिक फजीहत ज़िन्दगी की और क्या होगी कि जब भयावह गर्मी के दिन (तृषा में) चले गये तब जाकर यह सरोवर देखने को मिल रहा है।।७।।

औचित्य की (सारी) सीमाएँ तो मैं समझता हूँ उसी क्षण नष्ट-भ्रष्ट हो गई जब कौवों के दल ने कोकिलों के कण्ठ-माधुर्य की परीक्षा ली।।८।।

●

न कस्यापि दृष्टं मुखम्

नोन्मदो ऽभूवमैश्वर्यगर्वैर्न वा।
दैन्यदुःखेन कस्यापि दृष्टं मुखम्।।१।।

न्यूनमासीन्न चाऽपेक्षया वाऽधिकम्।
यन्नु धात्रा प्रदत्तं मदर्थं सुखम्।।२।।

कीदृशो मे विचित्रो नु यात्रापथः।
हन्त, सव्येऽपसव्ये मरुस्सम्मुखम्।।३।।

भालपट्टे ऽथ सीतावियोगोऽङ्कितः।
तत्किमर्थं मयोत्थापितं कार्मुकम्।।४।।

यां विना जीवितुं न क्षमोऽहं क्षणम्।
उर्वशी हृत्स्वकं साऽभिधत्ते वृकम्।।५।।

धर्मतप्ता जले शेरते सैरिभाः।
शैत्यविग्नास्तटं ते ज्वलद्बालुकम्।।६।।

मातुलानीमहो निर्मितुं पश्य भोः।
प्रत्ययं पाणिनिश्चाप्युपै**पैत्यानुकम्**।।७।।

संसृतौ सर्व एव स्वदाक्ष्यैर्मताः।
विद्धि तुल्यं कविं काञ्चनं कारुकम्।।८।।

रामनामाऽङ्कितं येन वा, यत्र वा।
मुक्तिमर्हेत्स कीटो ऽथ तद्दारुकम्।।९।।

अपराह्णे त्रिवादने
शाहाबादम् (कुरुक्षेत्रम्), २७.१२.२०१३ ई०

•

न मैं कभी ऐश्वर्य के गर्व से उन्मद हुआ और न ही दैन्य अथवा दुःख से (आर्त होकर) किसी का मुँह देखा।।१।।

मेरे लिए विधाता ने जो (जितना) सुख दिया (वस्तुतः) न वह (मेरी) अपेक्षा से कम था, न ही अधिक।।२।।

मेरे जीवन का यात्रापथ भी कैसा विचित्र था कि दायें, बायें और सामने (तीनों ओर) मरुस्थल ही था।।३।।

जब मेरे ललाट-लेख में **सीता** का वियोग ही लिखा था तो फिर किसलिए मैंने (उन्हें पाने के लिए) **पिनाक-धनुष** को उठाया।।४।।

जिसके अभाव में मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता था वह (मेरी प्रिया) उर्वशी अपने हृदय को **वृक** (भेड़िया) बता रही है।।५।।

घाम से तपे हुए भैंसे पानी में तैर रहे हैं और शैत्य से पीड़ित वे (घड़ियाल) जलती हुई बालू पर लेटे हैं।।६।।

वाह वाह! देखिये न! **मातुलानी** (मामी) शब्द की सिद्धि के लिए (महर्षि) **पाणिनि** भी **आनुक्** प्रत्यय का सहारा ले रहे हैं।।७।।

इस संसार में सारे जीव या पदार्थ अपने वैशिष्ट्य से ही पहचाने जाते हैं (इसलिये) कवि, काञ्चन तथा कारु (बढ़ई) को बराबर (महत्त्व का ही) समझो।।८।।

जिसने (अपनी सहज गति से) राम का नाम अङ्कित कर दिया और जहाँ भी (जिस काष्ठ में) कर दिया वह कीट (कीड़ा) तथा वह काष्ठ-दोनों ही मुक्ति के पात्र हैं।।९।।

●

जातोऽस्मि भक्षणाय

उप्तो ऽस्मि कर्तनाय क्लृप्तो ऽस्मि वर्धनाय।
कदलीक्षुपस्सखे ऽहं जातो ऽस्मि भक्षणाय।।१।।

चिरजीवनं मदीयं कस्यापि नाऽभिकाङ्क्ष्यम्।
आपुष्पफलसमृद्धि न्याय्यो ऽस्मि रक्षणाय।।२।।

असकृन्न किं समीहे फलितुं रसालतुल्यः।
लोके न साधु मन्ये किन्तु स्थिरोद्यमाय।।३।।

उपयोगितैव मे ऽभून्मज्जीवनाऽपहन्त्री।
ननु जातमात्र एव स्पृहयामि जीवनाय।।४।।

पत्राणि सूपकाराः पुष्पाणि तन्त्रिकास्ते।
स्कन्धं गजाश्च सर्वे घ्नन्ति प्रयोजनाय।।५।।

बदरी च वैरिणी मे प्रतिवेशिनीह जाता।
मन्दे ऽपि वाति वाते यतते निकृन्तनाय।।६।।

शिविरन्तिदेवकर्णाऽध्वानं श्रयामि दानैः।
साह्यं किमपि न याचे विधिमपि निजाऽभयाय।।७।।

यो दलयति स्वसौख्यं कदली स एव जातः।
तादृग्गुणो ऽथ कस्मात्स्पृहये मनोरथाय।।८।।

एको हतस्ततः किं जायन्त एव बहवः।
नूनं बहुप्रजोऽहं कल्पे परश्शताय।।९।।

अपराह्णे ४.१० वादने
पानीपतम्, २७.१२.२०१३ ई०

कटने के लिये ही उपजाया गया हूँ (शीघ्र) बढ़ने के ही लिये पाला गया हूँ। मित्रो! मैं तो केले का पौधा हूँ। भक्षण के ही लिये जनमा हूँ।।१।।

मेरी लम्बी जिन्दगी किसी को भी पसन्द नहीं (कि सौ-पचास साल जीऊँ) बस, जब तक मुझमें फूल और फल नहीं आ जाते, तभी तक मेरी सुरक्षा न्याय्य मानी जाती है।।२।।

क्या मैं भी आम की तरह बार-बार (हर वसन्त में) फलना नहीं चाहता? परन्तु समाज में सुस्थिर जीवन के लिए मैं अच्छा नहीं माना जाता।।३।।

मेरी उपयोगिता ही मेरे जीवन की विनाशिका बन गई। क्योंकि मैं पैदा होते ही 'दिन-दूना, रात-चौगुना' बढ़ने लगता हूँ।।४।।

मेरे पत्तों को रसोइये, फूलों को तान्त्रिक, तने को हाथी-अपने-अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिए काटते रहते हैं।।५।।

मेरी बैरन बदरी (कँटीली) बेर भी यहीं मेरी पड़ोसन बन गई है। जरा सी भी हवा चली नहीं कि मुझे चीरने-फाड़ने का यत्न करने लगती है।।६।।

मैं अपने दान से (महाराज) शिवि, रन्तिदेव तथा कर्ण के मार्ग का अनुसरण करता हूँ। ब्रह्मा से भी अपने **अभय** के लिए कोई सहायता नहीं माँगता।।७।।

जो अपने (ही) सुख को दलता रहता है वही तो **कदली** (कं सुखं दलतीति कदली) है न! तब फिर उस गुण वाला होकर भला मैं किस मनोरथ की आशंसा कर सकता हूँ? ।।८।।

(मेरे कुल का) एक काटा गया तो उससे क्या हानि? वहीं से ढेर सारे दूसरे पैदा होंगे। निश्चय ही मैं बहुप्रज हूँ अतः सैकड़ों बन सकता हूँ।।९।।

•

संस्कृतज्ञो न को जायते सव्यथः?

एकचक्रो विलिल्येऽद्य **लीलारथः**।
संस्कृतज्ञो न को जायते सव्यथः।।१।।

कालवातेन निर्वापितो दीपकः।
हन्त **काव्यप्रकाशो** ऽधुनास्ति श्लथः।।२।।

सामगात्रा विना ऋत्विजोऽध्यर्यवः।
किन्नु कुर्युर्हतश्शारदाया मखः।।३।।

सा विशाला विना येन लघ्वी पुनः।
क्वाऽस्त्यसौ भूसुराणां नवो मन्मथः।।४।।

वीथिकास्तद्वियोगेऽभवन्निर्जनाः।
रोदिति स्वैरमह्नाय घण्टापथः।।५।।

ध्वस्तमालोक्य विन्ध्याटवी**शाल्मलिम्**।
बन्धुभिस्सार्धमार्तिङ्गतोऽयं शुकः[1]।।६।।

कान्तपुष्पाऽभिराजप्रणववल्लभो।
देववाणीसमाजो ऽद्य गाढव्यथः।।७।।

हन्त विद्वत्समज्या**गुणाढ्यो** भवान्[2]।
अद्य जातोऽस्त्यकस्मान्नु **चञ्चत्कथः**।।८।।

रात्रि ९.२९ वादने
गार्गीछात्रावासः भोपालपरिसरः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, १६.०६.२०१४ ई०

---

१. राजेन्द्रमिश्र इत्यर्थः।
२. गुणाढ्यस्येव रथस्यापि बृहत्कथाऽऽसीत्। परन्तु दिवङ्गतस्सन्नसौ चञ्चत्कथो जातः।

एक चक्के वाला (अर्थात् पत्नी विहीन) **लीलारथ** (लीलावती नामक भार्या वाले प्रो० श्रीनिवासरथ) आज विलीन हो गया (यह जानकर) कौन संस्कृतज्ञ व्यथित नहीं है?।।१।।

कालरूपी हवा के झकोरे से दीपक बुझ गया। हाय! **काव्यप्रकाश** (साहित्यकार रथ) आज श्लथ हो चला है।।२।।

साममंत्रों के उद्‌गाता के अभाव में ऋत्विज (होता) तथा अध्वर्यु क्या करें? भगवती सरस्वती का यज्ञ ही नष्ट हो गया।।३।।

जिसके अभाव में वह **विशाला** (विशाल अथवा उस नाम की नगरी-उज्जयिनी) पुनः **लध्वी** बन गई। भूसुरों (संस्कृतज्ञों/देवताओं) का वह नूतन **मन्मथ** मम्मट (कामदेव) अब कहाँ है?।।४।।

(उज्जैन नगर की) गलियाँ उसके वियोग में जनशून्य हो गईं। सड़कें भी सचमुच रो रही हैं।।५।।

विन्ध्याटवी के शाल्मली को धराशायी हुआ देख यह शुकशावक (राजेन्द्रमिश्र) बन्धुजनों के साथ आर्ति को प्राप्त हो गया है।।६।।

रमाकान्त, पुष्पादीक्षित, अभिराजराजेन्द्र, इच्छाराम द्विवेदी 'प्रणव' तथा राधावल्लभ (आदि) हैं वल्लभ जिसके–ऐसा संस्कृत-समाज आज प्रगाढ़ व्यथा वाला बन गया है।।७।।

प्रो० श्रीनिवासरथ! सचमुच आप विद्वत् समज्या के **गुणाढ्य** (महाकवि/गुणागार) थे। आज अकस्मात् ही कथाशेष बन गये?।।८।।

•

अमृतोऽस्म्यहं जातः

इदानीं सोम पीत्वा मानवादमृतोऽस्म्यहं जातः।
क्व सम्प्रति साऽपवर्गेच्छा क्व वा पार्थिवतनूपातः।।१।।

मनोनन्दनवने मे राजते वाञ्छातरुर्ध्रुसदाम्।
इदानीं लिख्यते तेनैव मे जीवनकथोद्घातः।।२।।

घृताचीमेनकारम्भोर्वशीमपि हन्त लघयन्त्या।
कयाचित्स्वप्नसुन्दर्याऽवकीर्यत एव मुखवातः।।३।।

अहो वक्षःस्थले पश्यामि सालक्तकचरणबिम्बम्।
विलक्षणतां गता सन्ध्या विलक्षणतां गतः प्रातः।।४।।

यदि स्वप्नेष्वियत् सौख्यं विधे! स्वप्ना नु काम्यन्ते।
व्यथार्तो जागरो व्यर्थः समञ्चदनर्थसम्पातः।।५।।

समर्पणसान्द्रचन्दनलेपतोऽपगतो नु सन्तापः।
वपुश्चोशीरशीतलमद्य नष्टो विघ्नसंघातः।।६।।

किमिदमालिख्यते वा, लिख्यते वा-नैव जानेऽहम्।
यथार्थो वाऽथवा भ्रान्तिः बहूनां सम्प्लवो जातः।।७।।

दुरापस्तावदभविष्यं कथं स्वयमीप्सितो लक्ष्म्या।
ततस्तच्चरणपङ्कजमधुमधुप एवास्मि सञ्जातः।।८।।

उपप्लवकल्पदारुणजीवनम्मे स्वस्त्यहो तस्मै।
यदन्तोऽभून्महामायाऽऽशिषाऽन्ते स्वैरमवदातः।।९।।

प्रातः ८.५० वादने
गार्गीछात्रावासः भोपालपरिसरः
राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, २३.०६.२०१४ ई०

•

अब अमृत पीकर मैं मनुष्य से देवता बन गया हूँ। अब कहाँ रही वह मुक्ति की आकांक्षा और कहाँ रहा पार्थिव शरीर के क्षय (का भय?)।।१।।

मेरे मनरूपी नन्दनवन में विद्यमान हैं देवताओं का कल्पवृक्ष! अब उसी की लेखनी से मेरी जीवनकथा की भूमिका लिखी जा रही है।।२।।

घृताची, मेनका, रम्भा तथा उर्वशी को भी न्यग्भूत करती हुई किसी स्वप्न-सुन्दरी द्वारा अपना (सुरभित) मुखवात प्रसारित किया जा रहा है।।३।।

आश्चर्य है! अपने वक्षःस्थल पर (उस स्वप्नसुन्दरी के) अलक्तक-युक्त चरणों की छाप देख रहा हूँ। मेरी सन्ध्या विलक्षण बन गई है और विलक्षण बन गया है प्रभात।।४।।

यदि सपनों में ही इतना सुख है तो फिर विधाता! मैं सपने ही देखता रहना चाहता हूँ। व्यथाओं से ओत-प्रोत जागरण बेकार है जिसमें अनर्थों के सम्पात घटते रहते हैं।।५।।

(उस स्वप्नसुन्दरी के) समर्पण के प्रगाढ़ चन्दनलेप से (मेरा सारा) सन्ताप समाप्त हो गया, सारा शरीर आज खस के समान शीतल हो गया है और विघ्न-बाधाओं के समूह नष्ट हो चले हैं।।६।।

मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि यह सब मैं चित्र-कल्पित कर रहा हूँ अथवा लिख रहा हूँ? यह मेरा यथार्थानुभव है अथवा (चित्त की) भ्रान्ति? अनेक अनुभवों का घाल-मेल सा हो गया है।।७।।

लक्ष्मी के द्वारा स्वयं अभिलषित मैं भला कैसे दुर्लभ हो सकता था? इसीलिए उसके चरण-कमल के आसव का भ्रमर बन गया हूँ।।८।।

मेरा तो सम्पूर्ण दारुण जीवन ही उपप्लव (आन्दोलन) के समान था। कल्याण हो उसका! **क्योंकि उसका पटाक्षेप महामाया के आशीर्वाद से पूर्णतः मंगलमय हो रहा है।।९।।**

●

पृच्छ स्वयम्

अलं मम निन्दया पृच्छ स्वयं गत्वा विधातारम्।
धरायां येन **बर्बूरोऽस्मि** जनितः कण्टकाकीर्णः।।१।।

रसालं प्रेक्ष्य दूयेऽहं **पलाशः** किन्निमित्तम्भोः।
स इव नाहं वसन्ते लोष्टकाघातैरहो शीर्णः।।२।।

कलायै स्वस्ति ते **कलविङ्क!** सानन्दं विहर नीडे।
शयेऽहं निष्कलः कपिरपि तरुस्कन्धेषु निर्नीडः।।३।।

नखास्ते भल्लकल्पाः, प्राणहरणा मेऽपि विषदन्ताः।
न को धात्राऽऽत्मरक्षायै कृतः शक्त्या सखेऽक्षीणः।।४।।

निरीहं शम्बरं हन्ति प्रवेगश्चित्रको विजने।
परं कण्ठीरवैः किं सोऽपि नो दृष्टो हतो दीर्णः।।५।।

जगत्यां कोऽपि जीवो नैव भजतेऽन्यस्य तुल्यत्वम्।
अहो शिशुनाऽपि हन्यत एव हरिणा कुवलयापीडः।।६।।

कदाचिद्यो हि निगिरत्यजगरं मकरो महानद्याम्।
बहिस्थः सोऽपि दैवादजगरेण मयेक्षितो गीर्णः।।७।।

तुलय नाऽन्यं न चाप्यात्मानमपि तोलय परैस्सार्धम्।
भवात्मन्येव विश्वस्तो भविष्यसि जातु नो जीर्णः।।८।।

इमे भावा यदनुभूताः सुहृद्भ्यस्समुपदिश्यन्ते।
महत्कृच्छ्रेषु जातोऽहं यदनुकम्पासमुत्तीर्णः।।९।।

रात्रौ ८.०५ वादने
प्रयागावासः, २.१०.२०१४ ई०

मेरी निन्दा करना व्यर्थ है। स्वयं जाकर विधाता से पूछो न, जिन्होंने धराधाम पर कण्टकाकीर्ण मुझ **बबूल** को बनाया।।१।।

मैं पलाश (ढाँख) हूँ तो आम को देखकर क्यों दुखी होऊँ? (क्या मेरा यह सौभाग्य नहीं कि) वसन्त ऋतु में उसकी तरह, पत्थरों की मार से मैं जीर्ण-शीर्ण तो नहीं होता?।।२।।

हे कलविङ्क (चटक) तुम्हारी कला को प्रणाम है मेरा! अपने घोसले में आनन्दपूर्वक विहार करो। मैं (गृहनिर्माण की) कला-विहीन वानर हूँ। फिर भी, घोंसले के अभाव में, वृक्ष की कोटर में ही सो लेता हूँ।।३।।

भाले-सरीखे हैं (सिंह!) तुम्हारे नाखून तो मेरे भी विषदन्त प्राणों को हरने में समर्थ हैं। मित्र! अपनी रक्षा करने के लिए विधाता द्वारा भला कौन शक्ति-हीन बनाया गया है? (कोई नहीं)।।४।।

निर्बल हिरन को जङ्गल में, तीव्रगति वाला चीता मारता ही रहता है। परन्तु क्या वह स्वयं भी बबर शेर द्वारा मारा गया परिलक्षित नहीं।।५।।

संसार में कोई भी जीव दूसरे जीव के सर्वथा समान नहीं होता। आश्चर्य है कि (बारह वर्ष के) बालक कृष्ण द्वारा भी **कुवलयापीड** जैसा हाथी मार गिराया जाता है।।६।।

महानदी में जो मकर कभी अजगर को भी साबूत निगल जाता है, बाहर आने पर संयोगवश उसी को मैंने अजगर द्वारा भी निगला जाता हुआ देखा।।७।।

दूसरों को (अपने साथ) मत तौलो। अपने को भी दूसरों के साथ मत तौलो। बस, अपने में विश्वास सँजोओ। कभी भी जीर्ण नहीं होओगे।।८।।

ये भाव जो मैंने अनुभव किये, मित्रों के हितार्थ बता रहा हूँ। क्योंकि इन्हीं सत्यों की कृपा से मैं बड़े-बड़े संकटों को पार कर सका हूँ।।९।।

•

सा तृषाऽभूद्वृथा

सा तृषाऽभूद् वृथा या न सन्तर्पिता।
सा च गीतिर्मृता या न संश्राविता।।१।।

श्राव्यतामाम्रवाट्याः कथा कीदृशी?
या वसन्ते ऽपि नो मञ्जरीभिर्वृता।।२।।

निर्मितोऽयं किमर्थं धरित्र्यां मरुः।
पापिना येन बीजोद्गमाशा हृता।।३।।

सुभ्रु! लज्जस्व नो, एष पृच्छाम्यहम्।
इन्द्रजालैः कियन्तो विमानीकृताः।।४।।

मज्जयित्वा ऽखिलं रङ्गमश्रूदधौ।
रूपदक्षो हसेच्चेदियं दक्षता।।५।।

आशया हन्त यस्या गतं जीवनम्।
सा घटी नाऽगता, नाऽगता, नाऽगता।।६।।

या शिलीभूय शेतेऽत्र कान्तारके।
जातु साऽऽसीदहल्याऽङ्गना सम्मता।।७।।

सा गताऽसौ गतस्तौ गतौ, ते गताः।
हन्त, लोके समेषां कथैवाऽक्षता।।८।।

अङ्ग! गीतिस्त्रिवेणीकवेः श्रूयताम्।
प्राकृतेयं न भोः पूतमन्त्रात्मिका।।९।।

सायं ५.०० वादने
प्रयागावासः, १६.१०.२०१४ ई०

व्यर्थ हो गई वह प्यास जो बुझाई नहीं जा सकी। मर गई वह गीति जो (श्रोताओं को) सुनाई नहीं जा सकी।।१।।

उस अमराई की कौन चर्चा सुनाई जाय कि जो वसन्त की अगवानी में भी बौरा नहीं सकी।।२।।

पृथ्वी पर यह मरुस्थल (विधाता द्वारा) बनाया ही क्यों गया कि जिस पापी ने बीजों के अंकुरण की संभावना को ही मार दिया?।।३।।

हे सुभ्रु! लजाओ नहीं। यूँ ही पूछ रहा हूँ मैं कि (अपने रूप के) इन्द्रजाल से कितनों को तुमने कहीं का नहीं रखा?।।४।।

समूचे रङ्ग (दर्शक-दीर्घा) को आँसुओं के सागर में डुबो कर भी यदि कोई अभिनेता (स्वयं) हँस रहा होता है तो यही **तो है उसकी (अभिनय) चातुरी।।५।।**

जिसकी आशा (प्रतीक्षा) में सारा जीवन ही सिरा गया वह घड़ी नहीं आई, नहीं आई, नहीं (ही) आई।।६।।

इस कान्तार (बियावान) में जो शिला बनकर (निश्चेष्ट) सोई पड़ी है कभी वही समादरभाजन **अहल्या** नामक रमणी थी।।७।।

वह (आम्रपाली) चली गई, वह (अशोक महान्) चला गया। वे दोनों (आल्हा-ऊदल) चले गये और वे सब (पिरामिड बनाने वाले) भी चले गये। **हाय, लोक में बस उनकी कहानी भर अक्षत बची है।।८।।**

प्रियवर! सुनो **त्रिवेणीकवि अभिराजराजेन्द्र** का गीत। यह ऐसा-वैसा नहीं है। पवित्र मंत्र के समान प्रभावी है।।९।।

●

क्षमसे यदि!

परितोषकिरीटं भाले मे, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।
हृदये तृष्णाया लेशो नो, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।१।।

द्वारे-द्वारे लाङ्गूलं त्वं चालयसि दर्शयन्मुखमुदरम्।
भुञ्जेऽहं चाटुशतैर्बन्धो, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।२।।

प्राथमिकपाठशालाकल्पे भवने कस्मिंश्चित्त्वं कुलपः।
कुलपानां वयं विधातारः, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।३।।

कप्यासमार्जने नेतॄणां यातं ते वयोऽखिलं व्यर्थम्।
अम्बागृहनेतारो नु वयं, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।४।।

चन्द्रिका चतुर्दिवसीयेयं भूयोऽपि कालरात्रिर्नान्ता।
मोद्वह गर्वं निरवधि कुधिया, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।५।।

सः तौ ते ताः सर्वेऽपि गतास्त्वत्समयोऽप्यास्ते नेदिष्ठः।
स्यूतकं बधान, भविष्यं स्वं क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।६।।

विरला काबीरी छादनिका साऽप्यभिराजेन्द्रसमुपयुक्ता।
मुक्ता तत्रैव यथावदहो, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।७।।

कर्तुं चाऽकर्तुमहं प्रभवाम्यन्यथा कर्तुमपि बुद्धिमिति।
त्यज बन्धो! रावणकंसकथां, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।८।।

श्रेयसां केवलं मार्गोऽसौ ननु येन गतास्ते महाजनाः।
तेनैव सुखं सञ्चर भव्यं, क्षमसे यदि तर्हि विलोकय भोः।।९।।

मध्याह्ने १२.१८ वादने
प्रयागावासः, १८.१०.२०१४ ई०

•

यदि (देख पाने में) समर्थ हो तो **परितोष का मुकुट** मेरे मस्तक पर बँधा हुआ देखो। मेरे हृदय में लोभ का अंश भी नहीं है।।।१।।

तुम दरवाजे-दरवाजे उतान होकर पेट दिखाते हो और पूँछ हिलाते हो (याचना की मुद्रा में) परन्तु मेरे भाई! मैं सैकड़ों मिन्नतों के बाद भोजन ग्रहण करता हूँ। यदि समर्थ हो तो देखो।।२।।

प्राइमरी पाठशाला-सरीखे किसी भवन में तुम **कुलपति** बने बैठे हो। परन्तु हम हैं न ज़ाने कितने कुलपतियों को बनाने वाले! यदि समर्थ हो तो देखो।।३।।

तुम्हारी सारी ज़िन्दगी नेताओं का मलाशय धोने में ही गुज़र गई, परन्तु हम हैं **भवानी-मन्दिर के नेता!** यदि सामर्थ्य हो तो देखो।।४।।

तुम्हारी यह चाँदनी रात चार दिन की है। आगे तो पुनः कभी न समाप्त होने वाली काली रात ही है। अपनी दुर्बुद्धि से उस चाँदनी को असीम समझने का गर्व मत करो। यदि समर्थ हो तो देखो।।५।।

वह गया, वे दोनों गये, वे सब गये और वे सब (रूपगर्विताएँ) भी चली गईं। तुम्हारा (जाने का) समय भी अब अत्यन्त समीप है। अपनी गठरी बाँध लो। यदि समर्थ हो तो अपना भविष्य भी देख लो।।६।।

कबीरदास की झीनी-झीनी बुनी गई चादर अभिराजराजेन्द्र ने भी ओढ़ी। और उसे जैसे का तैसा रख भी दिया। यदि देख सको तो देख लो।।७।।

(मन चाहा) करने में, न करने में अथवा जो कुछ भी करने में मैं पूर्ण समर्थ हूँ–इस तरह की बुद्धि छोड़ दो मेरे भाई! यदि समर्थ हो तो रावण एवं कंस की ही जिन्दगी को देख लो।।८।।

कल्याण का तो बस वही एक मार्ग है कि जिससे होकर महाजन (महापुरुष) गुजरे हैं। उसी मार्ग से तुम भी सुखपूर्वक यात्रा करो। समर्थ हो तो देख लो।।९।।

•

पठितं त्वया वाक्याक्षरम्

हृदयं मया सम्प्रेषितं पठितं त्वया वाक्याक्षरम्।
उभयोरनर्हत्वं ततः स्वयमेव सिद्धं भूतले।।१।।

त्वां ननु तथाऽङ्गीकुर्वता कीदृग्भ्रमो मयकाश्रितः।
सुमचयमसृणसुकुमारता परिकल्पितैव शिलातले।।२।।

जाने न चाहं यत्त्वयाऽपि परीक्षितो ऽहं वा, न वा।
सम्भाव्यते यदयं जनोऽपि बलात्तवाऽपतितो गले।।३।।

यदखण्डपुण्यफलं मया त्वद्दर्शनैरूपकल्पितम्।
तत्साम्प्रतं विक्रीयते मूल्यैर्निशासु शिखावले।।४।।

शार्दूलविक्रीडितनिभोऽहं त्वञ्च सा हरिणीप्लुता।
उभयोः कथं स्यात्सङ्गमो विधिनिर्मिते ऽत्र महीतले।।५।।

इयमेव हन्त विडम्बना प्रीतेर्धरित्र्याकाशयोः।
नन्वन्तिकस्थावप्युभौ निभृतं न सम्मिलतो गले।।६।।

जीवन्ति भिषजामौषधैः केचित्खचुम्बिमहालये।
केचित्सुखं जीवन्ति नीरोगाः पुनः पादपतले।।७।।

यशसामनु त्वं सरन्नपि जातो न शक्तः स्पर्शने।
आजीवनं नु तदेव मां परितस्ससार पले-पले।।८।।

तुल्यं मया युद्धं कृतं सह वैरिभिस्समराङ्गणे।
सिंहः किमाक्राम्यत्यहीने मृगशिशौ ननु निर्बले?।।९।।

सायं ४.१५ वादने
प्रयागावासः, १८.१०.२०१४ ई०

•

मैंने भेजा था (पत्र की शक्ल में अपना) हृदय, परन्तु तुमने पढ़ा उसमें लिखे वाक्यों के अक्षरों को। इस प्रकार, संसार में हम दोनों की ही अयोग्यता प्रकट हो गई।।१।।

निश्चय ही, तुमको **उस प्रकार का** मानते हुए मैंने कैसा भ्रम पाल लिया था! मानो पत्थर की शिला में पुष्प-समूह की मसृण सुकुमारता ही परिकल्पित कर ली।।२।।

मैं नहीं जानता कि (मेरी ही तरह) मैं भी तुम्हारे द्वारा परीक्षित किया गया या नहीं? सम्भव है कि यह जन (अर्थात् मैं) भी जबर्दस्ती तुम्हारे गले आ पड़ा हो।।३।।

तुम्हारे रूप-सौन्दर्य के दर्शन से मैंने जिस **अखण्ड पुण्यफल** की परिकल्पना की थी अब वह रात के उजाले में (चोरी-छिपे नहीं) मोल-भाव करके बिक रहा है।।४।।

मैं हूँ **शार्दूलविक्रीडित** के समान और तुम हो **हरिणीप्लुता!** ब्रह्मा के बनाये इस भूतल पर फिर हमारा-तुम्हारा सङ्गम हो भी तो कैसे?।।५।।

धरती और आकाश के प्रेम की यही तो विडम्बना है कि दोनों एक-दूसरे से सटे-सटे तो दीखते हैं फिर भी प्रगाढ़ गलबाँही नहीं कर पाते।।६।।

कुल लोग ऐसे हैं जो गगनचुम्बी राजमहलों में जी रहे हैं डॉक्टरों की औषधियों के भरोसे। परन्तु कुछ वे लोग भी हैं जो सर्वथा नीरोग हैं और पेड़ों की छाँव में सुख की जिन्दगी जी रहे हैं।।७।।

यश और कीर्ति का पीछा करते हुए भी तुम उन्हें छू भी पाने में समर्थ नहीं हो सके। परन्तु वही यश-कीर्ति सारी जिन्दगी, छन-प्रतिछन मेरे इर्द-गिर्द फरी मारते रहे।।८।।

समराङ्गण में मैं अपने वैरियों के साथ बराबरी का लोहा लेता रहा। बबर शेर क्या एक दिन पहले जनमें निर्बल मृगछौने पर आक्रमण करता है?।।९।।

●

सम्प्रति विधे! क्व यानि?

प्रीतिर्दृढा निबद्धा पत्न्यां वयस्यशीतौ।
कं दर्शयानि वदनं सम्प्रति विधे क्व यानि।।१।।

प्रतिभाति सा पराम्बा, साक्षादथा ऽन्नपूर्णा।
देवीव दृश्यते सा, ननु पाहि मां भवानि।।२।।

तनयोऽपि मर्त्यवदनो हेरम्ब एव भाति।
तदवेक्षितानि नूनं प्रत्यूहनाशकानि।।३।।

कैलाशकल्पसौधे निवसाम्यहं कपर्द्दी।
गायन्ति भारते मे भक्ताश्च गीतकानि।।४।।

न स जनपदो ऽस्ति कश्चिन्नगरं न वा ऽग्रहारः।
यत्रोच्छ्रितानि न स्युर्मम कीर्तिमन्दिराणि।।५।।

अमृताशिनः प्रथन्तां कामं समेऽपि देवाः।
अजरोऽमरो ऽस्म्यहम्भोः कृत्वा गले विषाणि।।६।।

अभिषिञ्चति प्रकामं मां सिद्धसिन्धुगङ्गा।
शमयन्ति कालकूटं बालेन्दुतर्पणानि।।७।।

आजीवनं पिशाचैः प्रेतैः समावृत्तोऽहम्।
अशिवैरपि स्ववृत्तै रचितान्यहो शिवानि।।८।।

प्रमथाः पदे-पदे मे विलसन्ति रूपदक्षाः।
तन्वन्ति शिक्षितानि लास्यानि ताण्डवानि।।९।।

रात्रौ ७.३० वादने
प्रयागवासः, १८.१०.२०१४ ई०

•

अस्सी की उम्र में पत्नी से गहरा प्रेम हो चला है। हे विधाता! अब किसे मुँह दिखाऊँ? कहा जाऊँ?।।१।।

कभी वह मुझे **पराम्बा** सी प्रतीत होती हैं। अथवा कभी साक्षात् **अन्नपूर्णा** सी दीखती है। वह मुझे देवी जैसी दीखती हैं। माँ भवानी! मेरी रक्षा करो।।२।।

मनुष्य जैसे मुँह वाला (मेरा) बेटा भी मुझे **हेरम्ब** (गजवदन गणेश) ही परिलक्षित होता है। उसकी दृष्टियाँ भी सचमुच विघ्न-बाधाओं का नाश कर डालती हैं।।३।।

कपर्द्दी मैं कैलास-पर्वत पर बने सौध-सरीखे अपने भवन में रहता हूँ, मेरे भी भक्तगण भारत भर में मेरे गीत गाते रहते हैं।।४।।

ऐसा कोई जनपद नहीं, नगर नहीं, गाँव नहीं–जहाँ मेरे कीर्ति-मन्दिर शोभायमान न हों।।५।।

भले ही सारे देवगण 'अमृताशी' बनकर यश प्राप्त करें। परन्तु मैं भी कण्ठ में विष धारण कर अजर-अमर बन गया हूँ।।६।।

सिद्धसिन्धु (काव्यरूपी) गंगा मुझे भी दिन-रात सींचती रहती हैं। और बालचन्द्रमा की शिशिरता मेरे कालकूट का शमन करती रहती है (कवित्व मेरे सांसारिक-ताप का शमन करता रहता है)।।७।।

सारी जिन्दगी मैं पिशाचों एवं प्रेतों (कृतघ्नों तथा अकारणवैरियों) से घिरा रहा हूँ। अपने **अशिव** रूप से भी मैंने **शिवत्व** की सर्जना की है।।८।।

रूपदक्ष (अभिनय-परायण) मेरे प्रमथ (सहचर) पद-पद पर विद्यमान **हैं**। वे मेरे सिखाये लास्य और ताण्डव का चतुर्दिक् विस्तार कर रहे हैं।।९।।

•

तुल्यार्चनाऽप्यवमानना

दुर्वचोभिर्जायते नो वेदना।
सद्वचोभिरवाप्यते नो प्रेरणा।।१।।

कीदृशी मम बन्धवो जाता स्थितिः।
मत्कृते तुल्यार्चनाऽप्यवमानना।।२।।

यत्र **दृष्टान्तं** सखायस्तन्वते।
तत्र मह्यं रोचते नु **निदर्शना**।।३।।

ईदृगन्यसमर्थने जाता रुचिः।
अनुवदामि भणन्ति यद्धि सुहृज्जनाः।।४।।

फाल्गुनं प्रागेतु वैशाखोऽथवा।
नो वशे यत् तत्र का परिदेवना।।५।।

कुन्तकस्तामभिदधात्यभिधामयम्।
लक्षणाऽन्येषां कृते वा व्यञ्जना।।६।।

नेतृभिर्बहिरागतैः कारागृहात्।
पश्य, पुनरपि कर्ण्यते जयघोषणा।।७।।

राजनीतौ सर्वमपि तुल्यं मतम्।
वन्दना संस्थापना संघट्टना।।८।।

वसन्नपि भवने वृणे काननमहम्।
निर्वहामि यदुह्यते नु तपस्विना।।९।।

रात्रौ ९.४२ वादने
प्रयागावासः, १८.१०.२०१४ ई०

(किसी के) दुर्वचनों से (अब) वेदना नहीं होती। और न ही सद्‌वचनों से प्रेरणा (उत्साह) प्राप्त होती है।।१।।

भाइयों! यह मेरी क्या हालत हो गई है कि मेरे लिये (मेरी) पूजा-अर्चा तथा अवमानना (लानत-मलामत) दोनों बराबर हो गये हैं।।२।।

जहाँ पर मेरे मित्रगण **दृष्टान्त** अलङ्कार बताते हैं, वहीं मुझे **निदर्शना** अच्छी (उचित) लगने लगती है।।३।।

दूसरों का मत-समर्थन करने में ऐसी रुचि हो चली है कि मित्रगण जो भी कहते हैं उसी को दुहराने लगता हूँ (हाँ में हाँ मिलाने लगता हूँ)।।४।।

(अब) पहले फागुन आए अथवा वैशाख। जो अपने वश का नहीं है, उसमें क्या रोना-धोना? ।।५।।

यह आचार्य कुन्तक जी उसी को (विचित्र) अभिधा कह रहे हैं जो औरों (अन्य आचार्यों) के लिए लक्षणा अथवा व्यञ्जना है।।६।।

वाह रे वाह! जेल काट कर बाहर आये हुए (दागी) नेताओं द्वारा फिर अपनी 'जयजयकार' सुनी जा रही है।।७।।

राजनीति में सब कुछ एक जैसा ही मान्य है–वन्दना, पद-प्रतिष्ठा तथा थुड्डू-थुड्डू।।८।।

भवन में रहते हुए भी मैं अरण्यवास का ही सुख पा रहा हूँ। जो एक तपस्वी द्वारा किया जाता है वही सब मैं भी कर रहा हूँ।।९।।

•

लोलार्को गतः

गाढे तमसि विनिमज्ज्य पद्मवनानि लोलार्को गतः।
कृत्वा निरुत्सवकानि सत्त्ववनानि **लोलार्को** गतः।।१।।

लोके बभौ **यश्चण्डिकाशुक्लः प्रसादसमन्वितः**।
सहि मे उपाध्यायोत्तमोऽप्यमृताशिनां लोकङ्गतः।।२।।

आनन्दवर्धनमर्म येन समीक्षितं विशदीकृतम्।
अवदातदीपशिखाधरस्सोऽभिनव**दृक्पातो** गतः।।३।।

नाट्यप्रयोगे दक्षता ननु पाणिनीयबहुज्ञता।
सा साहितीमर्मज्ञता रसवर्त्म**परिपाको** गतः।।४।।

सा मितपदा मधुवक्तृता चेष्टादिवैशिष्ट्यान्विता।
सा नयनभाषामाधुरी स्रवदमृत**जनवार्तो** गतः।।५।।

संस्पृश्य सकृदपि यत्पदं जातं वपुर्ननु काञ्चनम्।
स स्पर्शमणिरस्मादृशां पदसेविनां **तातो** गतः।।६।।

संसेव्य यं माकन्दकं पिचुमन्दताऽपि लयङ्गता।
स हि कतिपयेषां निर्गुणानां **गुणनमोवाको** गतः।।७।।

मौढ्यान्धकारे मज्जिता साम्प्रतं तीर्थपतेः पुरी।
आचार्यशुक्लेऽस्तङ्गते **सारस्वतालोको** गतः।।८।।

अभिराज एष तदीय दशगात्राऽह्नि रोदिति निर्भरम्।
हित्वाऽत्र मां भवरौरवे क्व नु **मेऽधिकृतनाको** गतः।।९।।

रात्रौ ८.४५ वादने
इलाहाबाद जंक्शने, १९.१०.२०१४ ई०

•

कमल-वनों को प्रगाढ़ अन्धकार में डुबो कर चला गया लोलार्क (गतिमान् सूर्य) वन्य जीव-जन्तुओं से भरे-पुरे कानन को उत्सव-विहीन बनाकर चला गया लोलार्क **(पूज्य गुरुवर्य प्रो० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल का राशि-नाम लोलार्क था)।।१।।**

समाज में **जो चण्डिकाप्रसाद शुक्ल** के नाम से जाना-पहचाना जाता था, वह मेरा पूज्य उपाध्याय अमृताशियों (देवताओं) के लोक को चला गया।।२।।

आचार्य आनन्दवर्धन के मर्म को जिसने समीक्षापूर्वक विशद बनाया वह समुज्वल **दीपशिखा** (दीप, तन्नाम्नी ध्वन्यालोक की हिन्दी टीका) को धारण करने वाला तथा नूतन दृष्टि वाला (अर्थात् प्रतीयमानार्थ को ध्वनि से भिन्न मानने वाला तथा आचार्य अभिनवगुप्त के ही समान मौलिक दृष्टि वाला) वह आचार्य चला गया।।३।।

नाटकों के मञ्चन में दक्षता तथा व्याकरणशास्त्र में वह मर्मज्ञता! साहित्यशास्त्र के रहस्यों की वह समझ! (क्या करूँ?) रस-सम्प्रदाय का वह परिपाक ही चला गया।।४।।

चेष्टादि के वैशिष्ट्य से ओत-प्रोत, नपे-तुले शब्दों वाली वह रसभरी वार्ता शैली! वह नेत्रों से कढ़ती भाषा-माधुरी! प्रियजनों के साथ अमृत टपकाती वार्ता का वह कलाकार ही चला गया।।५।।

जिसके चरणों को बस एक ही बार छूकर (मेरा) यह शरीर सोना बन गया, मेरे जैसे पदसेवी शिष्यों का वह स्पर्शमणि (पारसमणि) ही चला गया।।६।।

आम्रवृक्ष-सरीखे जिसकी सेवा करके, नीम जैसा (अपना) कसैलापन भी समाप्त हो गया, ऐसे कुछ गुणहीनों का वह गुणमय नमोवाक ही चला गया।।७।।

अब तीर्थपति (प्रयाग) की पुरी मूर्खता के अन्धकार में डूब गई। आचार्य शुक्ल के अस्तगत होने से सारस्वत आलोक ही चला गया।।८।।

उन (पूज्य गुरुवर्य) के दशगात्र के दिन यह अभिराज जीभर कर रो रहा है। मुझे इस संसाररूपी रौरव में (अकेला) छोड़कर मेरा वशीकृत-स्वर्ग कहाँ चला गया है? ।।९।।

•

विपदो न लज्जध्वे कथम्?

दृष्ट्वाऽपि सौम्यसहिष्णुतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।
वृत्वाऽप्यहो स्वां व्यर्थतां विपदो न लज्ज्वध्वे कथम्।।१।।

ननु शैशवादनुसरथ मां प्रतिबिम्बतां समुपागताः।
प्रसभमीक्ष्य मे शालीनतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।२।।

तातो गतो, जननी गता, मम सोदारावपि दिवमितौ।
अवलोक्य भो मदुदश्रुतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।३।।

जातः प्रभाते प्रत्यहं, सायं स्थविरतामुपगतः।
दृष्ट्वा च निशि निष्प्राणतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।४।।

व्याघातपापकलङ्ककल्मषवञ्चनादिवृथायुधैः ।
भित्वैत्य यत्नदरिद्रतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।५।।

एकतः स्थ च यूयं विपक्षपुषोऽथ मोघपराक्रमाः।
सार्धं मयैक्ष्य **गिरेः सुतां विपदो** न लज्जध्वे कथम्।।६।

इयती नु वो निर्लज्जता निर्बन्धपरता चेयती।
प्रेक्ष्यापि जगदुपहास्यतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।७।।

अभिमन्युरिव सोऽहं प्रविष्टस्तव जटिलहृदयान्तरे।
बहिरागमे दृष्ट्वाऽज्ञतां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।८।।

तीर्णो मया काव्याम्बुधिर्न बिभेमि, संस्कृतसेवया।
जानामि नलराघवकथां विपदो न लज्जध्वे कथम्।।९।।

रात्रौ ०८.१० वादने
इलाहाबाद जंक्शने, २०.१०.२०१४ ई०

•

मेरी सौम्य सहिष्णुता को देखकर भी विपत्तियों! तुम लोगों को शर्म क्यों नहीं आती? (मुझे सन्तप्त करने में) अपनी नाकामी को देखते हुए भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।१।।

परछाईं बनकर तुम लोग बचपन से ही मेरा पीछा कर रही हो। मेरी शालीनता को देखते हुए भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।२।।

पिता चले गए! माँ चली गई। दो-दो सहोदर भी स्वर्गवासी हो गए। मेरी आँखों में उमड़ा सावन देखते हुए भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।३।।

प्रत्येक ब्रह्मवेला में मैं **पैदा** होता रहा। प्रत्येक सन्ध्या में मैं बूढ़ा होता रहा। और हर रात में मुझे **निष्प्राण होता** देखकर भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।४।।

व्याघात (विघ्न-बाधा) पाप, कलङ्क, कल्मष एवं प्रवञ्चना आदि के व्यर्थ हथियारों से आहत कर (तथापि) अपने प्रयासों की दरिद्रता (व्यर्थता) देखकर भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।५।।

मेरे विपक्ष में खड़ी तथा वाहियात परिश्रम करने वाली तुम सब एक ओर हो। और दूसरी ओर (मेरी रक्षा के लिए) **मेरे साथ खड़ी गिरि-सुता भगवती पार्वती** को भी देखकर, विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।६।।

तुम लोगों की इतनी निर्लज्जता? और जिद पर अड़े रहने की ऐसी अक्खड़ता (कि मुझे बरबाद करके ही थिर लोगी?) सारे संसार में (कुछ न उखाड़ पाने की) अपनी हँसी-हँसारत से भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।७।।

(चक्रव्यूह जैसे) तुम्हारे जटिल हृदय के भीतर मैं भी **अभिमन्यु** की तरह धँस चुका हूँ। अब बाहर निकल पाने में मेरा अज्ञान देखकर भी विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती? ।।८।।

तो मैंने भी संस्कृत की सेवा करके काव्यरूपी सागर को पार कर लिया है। मैं डरता नहीं। नल और राघव की (भी) विपत्कथा को मैं जानता हूँ। विपत्तियों! तुम्हें शर्म क्यों नहीं आती।।९।।

•

दृष्टिर्नु ते निपतिष्यति

कातरशिलाखण्डोऽस्म्यहं देवस्वरूपमुपार्जितुम्।
स्थपते! कदा मयि वत्सला दृष्टिर्नु ते निपतिष्यति।।१।।

सर्वार्थसिद्धिरसौ हि योगो यस्तु भवता वर्णितः।
नक्षत्रविन्मम जीवने स कदा पदं नु करिष्यति।।२।।

आदावनेनाऽप्यापणे ननु चायमेव विनिर्मितम्।
किमयं जनोऽपि समुत्प्लवन् मन्त्री कदापि भविष्यति।।३।।

ज्ञानं गभीरं धिक्, **विविधकार्याङ्ग्योगं** ब्रूहि ते।
विदुषां नियुक्तिरिहाऽखिला तत्कौशलेन भविष्यति।।४।।

अङ्गणनिभे शिक्षाजगति बहुरूपभूयिष्ठेऽधुना।
सञ्चालनं **भगिनी नु मे तुलसी** चिराय करिष्यति।।५।।

राजाऽस्म्यहं मम निर्णयोऽपि ततोऽस्ति राजाज्ञा परा।
हस्ते गृहीत्वोपस्करं मन्त्री तृणान्यपनेष्यति।।६।।

राहुः कदापि, कदापि शनिरिह, मङ्गलोऽपि विमङ्गलः।
मन्ये प्रयाणानन्तरं सुदिनं नु मे समुदेष्यति।।७।।

जगदम्ब! लूतातन्तुजालनिभे शरीरे चिन्मयम्।
बद्ध्वाऽऽत्मकीटमिमं नु मे कियदवधि सङ्क्रीडिष्यसि।।८।।

मत्वैव निर्गतिकं विमूढं कान्दिशीकमनाश्रयम्।
ईशानगेहिनि! किन्न मां मज्जन्तमेत्य ग्रहीष्यसि।।९।।

प्रातः ५.३५ वादने
इलाहाबादजंक्शने, २०.१०.२०१४ ई०

•

देवता का स्वरूप प्राप्त करने के लिए कातर एक शिलाखण्ड हूँ। हे मूर्तिकार! तुम्हारी वत्सला दृष्टि मुझ पर कब पड़ेगी? ।।१।।

वह **'सर्वार्थसिद्धि'** नाम का योग, जो आपने वर्णित किया है। ज्योतिषी जी! मेरी ज़िन्दगी में कब पदार्पण करेगा? ।।२।।

प्रारम्भ में इस आदमी ने भी बाजार में चाय ही बनानी शुरू की थी। तो क्या यह बन्दा भी छलाँग लगाकर कभी (प्रधान) मंत्री बन पायेगा? ।।३।।

तुम्हारे गम्भीर ज्ञान से हमें क्या लेना-देना? बस, अपने विविध कार्यों के अङ्कों का योग मुझे बताओ। इस विद्यालय में विद्वान् प्राध्यापकों की सारी नियुक्तियाँ बस इसी फितरत से होनी हैं।।४।।

नामी गरामी विद्वानों से भरे-पुरे आँगन-सरीखे शिक्षाजगत् में अब चिरकाल तक शिक्षा का सञ्चालन **मेरी बहन तुलसी** ही करेगी।।५।।

मैं राजा हूँ। अतएव मेरा निर्णय भी अनुल्लंघनीय राजाज्ञा ही समझो। **अब हाथ में झाड़ू लेकर मंत्री भी खर-पतवार साफ करेगा।।६।।**

कभी राहु तो कभी शनि! मेरी जिन्दगी में मङ्गल भी अमङ्गल ही बना रहा। मैं तो मानता हूँ कि प्रयाण (मृत्यु) के बाद ही मेरा सु-दिन आयेगा।।७।।

हे जगदम्ब! मकड़ी के जाले-सदृश इस शरीर में चिन्मय आत्मारूपी कीड़े को बाँधकर, कब तक खेल खेलती रहोगी? ।।८।।

हे ईशानगेहिनि! मुझ डूबते हुए को निर्गतिक, विमूढ़, प्राण बचाने के लिये भागने को तत्पर तथा अरक्षित जानते हुए भी क्या तुम पकड़ नहीं लोगी? ।।९।।

•

कथं गोपयानि?

स्वपापं मया सर्वतोऽपि प्रलीनम्।
परञ्चात्मनस्तत्कथं गोपयानि।।१।।

परेषां कृतोत्थाप्य कौलीनचर्चा।
स्वकौलीनकाण्डं कथं शोधयानि।।२।।

न जीवात्मनस्तादृशं दुर्मदत्वम्।
न वा साहसान्यन्यथा तानि-तानि।।३।।

यथोपैति वैसर्जनी काऽपि वेला।
तथैनांसि नृत्यन्ति नो कानि-कानि।।४।।

समाराधितो नैव शम्भुर्न चाम्बा।
न गीता, न शास्त्राणि संसेवितानि।।५।।

अहो भोगझञ्झाऽनिले सम्प्रवृत्ते।
न गीतानि गीतानि भावस्थिराणि।।६।।

हया इन्द्रियाणां धृता वल्गया नो।
न हृन्मन्दिराणि द्रुतं दीपितानि।।७।।

तितउनाऽप्यपः पातुमेव प्रयतितम्।
न शान्ता तृषा नो जलान्यच्युतानि।।८।।

अहो जीवनं स्वप्नकल्पं व्यतीतम्।
क्व सौख्यानि तान्यक्षिलक्ष्यीकृतानि।।९।।

प्रातः ७.११ वादने
शिमला, २२.१०.२०१४ ई०

●

अपने पाप को मैंने चारों ओर से तो छिपा दिया। परन्तु (अब) अपने-आप से कैसे छिपाऊँ? ।।१।।

दूसरों की तो मैंने (बिना प्रसङ्ग के भी) उभार-उभार कर लोकापवाद-चर्चा की। अब अपने मुँह में लगी कालिख को कैसे साफ करूँ? ।।२।।

निरीह जीवात्मा (प्राणी) की भला वैसी मदान्धता कहाँ? विना अदृष्ट-प्रेरणा के भला वैसे-वैसे (दुष्कर्मसाधक) साहस भी कहाँ? (पूर्व जन्म के कर्म ही इन सबके कारणभूत होते हैं)।।३।।

जैसे-जैसे विदाई की कोई वेला (मृत्यु-क्षण) पास आ रही है, वैसे ही वैसे स्वाचरित कौन-कौन पाप नग्न नृत्य नहीं कर रहे हैं।।४।।

न शम्भु की समाराधना की, न ही पराम्बा की। न ही गीता एवं शास्त्रों का संसेवन किया।।५।।

हाय रे! भोग-विलास की आँधी चलने पर, भाव-स्थिर गीतों को भी नहीं गा सका (घटिया किस्म के गीत गाये)।।६।।

इन्द्रियों के घोड़ों की लगाम नियंत्रित नहीं कर सका। हृदय के मन्दिरों में प्रकाश तक नहीं कर पाया।।७।।

चलनी (छिद्रयुक्त चर्मपात्र) से पानी पीने का यत्न किया। उससे न ही प्यास बुझ पाई, न ही पानी गिरने से बच पाया।।८।।

ओफ्! सारा जीवन ही स्वप्न की तरह बीत गया। मन-चाहे उन सुखों को आँख से कहाँ देख सका? ।।९।।

●

त्वं मया वीक्षिता

त्वं मया वीक्षिता निर्निमेषं तथा।
नादिनी घनघटा बर्हिणाऽसौ **यथा**।।१।।

मन्दमन्दं त्वया यच्च सम्भाषितम्।
गीतगोविन्दिनी सैव जाता **कथा**।।२।।

चाटुशृङ्गैस्त्वमङ्गे यथोत्सारिता।
तेन सारङ्गबालेव जाता **श्लथा**।।३।।

भाति गेहोऽपि मे द्रोणशैलोऽधुना।
यत्र सञ्जीवनी त्वं विनश्यद्**व्यथा**।।४।।

उद्धृतोऽपि त्वया हा निमज्जाम्यहम्।
प्रेक्ष्यते कीदृशीयं प्रतीप**प्रथा**।।५।।

स्वातिमेघा अकस्मादवर्षन्नहो।
पीत्कृतिश्चातकानामभूत्सा **वृथा**।।६।।

स्वेन मार्गेण गच्छन्ति चेत्सूरयः।
वक्तुमर्हाः कथं तर्हि ते **उत्पथाः**।।७।।

भिद्यते चेत्परेभ्यो ऽभिराजो यदि।
ब्रूहि, दीयेत का युक्तिरत्राऽन्यथा।।८।।

अपराह्ण १.१६ वादने
नई दिल्ली रे० स्टेशन, ५.०१.२०१५ ई०

●

अपलक नेत्रों से तुम मेरे द्वारा यूँ ही देखी गई **जैसे गड़गड़ाहट पैदा करने वाली कोई धनघटा मयूर द्वारा देखी जाती है।।१।।**

तुमने मन्द-मन्द गति से जो कुछ कहा वही बन गई गीतगोविन्द जैसी रससिक्त कथा।।२।।

मेरी चाटुवार्ता-रूपी सींगों से तुम जिस तरह कुरेदी गईं उससे तुम बाल-हिरनी सी रतिश्लथ हो उठीं।।३।।

अब तो मेरा घर भी **द्रोणगिरि** सा लगने लगा है जिसमें विद्यमान हो तुम घाव पुजाने वाली सञ्जीवनी बूटी की तरह।।४।।

यह कैसी उल्टी रीति दीख रही है कि तुम्हारे द्वारा उठाया जाने पर भी मैं (तुम्हारे प्रेम में) डूबा रहा हूँ।।५।।

ओह! पपीहों की वह पी कहाँ की रट तो बेकार ही हो गई जो कि स्वाती नक्षत्र के मेघ अचानक बरस गए।।६।।

यदि यह सत्य है कि सूरि-गण (शायर) अपने ही बनाए मार्ग से आगे बढ़ते हैं (लीक छाँड़ि, तीनों चलें शायर, सिंह सपूत) तो फिर उन्हें **उत्पथ** (मार्गच्युत) कैसे कहा जा सकता है? ।।७।।

यदि **अभिराज** दूसरों (ईर्ष्यालुओं) द्वारा दुखी किया जाता है तो (तुम्हीं) बताओ, इस विषय में और कौन युक्ति दी जाय? (ईर्ष्यालु तो दुखी करेगा ही)।।८।।

•

नग्ननृत्येन नो

नग्ननृत्येन नोऽवाप्यते रोचना।
भ्रष्टशब्दैर्न चाऽधीयते सर्जना।।१।।

तालवृन्तानिलैर्विद्धि बन्धो! ध्रुवम्।
नैव झञ्झा समुत्थाप्यते दारुणा।।२।।

क्रीतलेखैर्बलादाप्तशंसापदैः ।
कीदृशी हन्त नैजी बृहन्नन्दना।।३।।

लुब्धलालाटिकैः प्राक्समायोजितैः।
कीदृशी वन्दना वाऽथ जयघोषणा।।४।।

पद्मसम्भूषणं धिक्च पद्मश्रियम्।
द्वारि पौच्छी कृता चेत्समुद्धूनना।।५।।

को नु लाभः पिशाचत्ववृत्तिग्रहैः।
जात एवाऽस्मि चेद् भूसुरो जन्मना।।६।।

नाऽभिधायां मतिर्लक्षणायां गतिः।
तर्हि चेटीभवेत्ते कथं व्यञ्जना।।७।।

मौक्तिकं बिन्दुमाहस्व बन्धो! दृशोः।
काम्यते चेत्प्रशस्ताऽध्वसम्पादना।।८।।

प्रज्ज्वलन्नस्मि नित्यं निसर्गादहम्।
गृह्यते नो ततोऽन्यैर्ममाश्रावणा।।९।।

प्रातः ७.२४ वादने
प्रयाग-आवासः, ७.०१.२०१५ ई०

●

नंगी नाच से प्रशंसा नहीं मिलती और न ही भ्रष्ट (असंस्कृत) शब्दों से काव्य-सर्जना संभव हो पाती है।।१।।

मेरे भाई! यह ध्रुव मान लो कि ताड़ के पंखों की हवा से दारुण झञ्झाएँ (आँधियाँ) नहीं उठा करतीं।।२।।

खरीदे गए लेखों तथा जबर्दस्ती (पिछलग्गूपने) प्राप्त किये गये प्रशंसावचनों से अपना **अभिनन्दन-ग्रन्थ** भला कैसा?।।३।।

लालची पिट्ठुओं तथा पहले से ही (यथाकथञ्चित्) **पटाए गए** लोगों से यदि वन्दना मिली अथवा जय-जयकार हुई तो किस काम की?।।४।।

उस **पद्मभूषण** अथवा **पद्मश्री** को धिक्कार है जिसके लिये किसी के द्वार पर पूँछ हिलाई गई हो।।५।।

पिशाचों जैसी वृत्ति (आचरण) अपनाने का भला क्या लाभ? मैं तो जन्म से ही पैदा हुआ हूँ, पृथ्वी पर देवता बनकर (अथवा भूसुर=ब्राह्मणवंश में)।।६।।

न अभिधा में बुद्धि काम करती है और न ही लक्षणा (के प्रयोग) में गति (सामर्थ्य) है, तो फिर **व्यञ्जना** तुम्हारी चेटी कैसे बन जाय?।।७।।

यदि निर्विघ्नरूप से (अध्व-सम्पादना) मार्ग-यात्रा चाहते हो तो बन्धु! आँखों को मोती जैसे आँसुओं से मुक्त रखो (अथवा यदि किसी पत्रिका का सम्पादन करना चाहते हो तो **दृक** को मोतियाबिन्द से मुक्त रखो)।।८।।

मैं तो प्रकृति से ही निरन्तर दहक रहा हूँ, इसीलिये दूसरों द्वारा मेरी बात सुनी नहीं जाती (मेरे ताप से वे मेरे पास आ ही नहीं पाते)।।९।।

•

दीपोऽहम्

दीपोऽहं प्रियो न घनतमसाम्।
आत्मनः प्रकाशाद् विकस्वरात्।।१।।

गीती, नेष्टो हतकण्ठानाम्।
आत्मनो नु रागात् श्रुतिम्भरात्।।२।।

प्राज्ञोऽपि न मतो विमूढ़ानाम्।
आत्मनो विचारादृतम्भरात्।।३।।

मेघोऽहमरिर्मन्दाराणाम्।
वृष्ट्या तत्पत्रोच्चयक्षयात्।।४।।

सूर्योऽहं कैरववनीरिपुः।
तस्या दुर्व्यसनाल्लयङ्करात्।।५।।

ननु महत्तमोऽहं शीर्षस्थः।
महतोऽपि महानपि महत्तरात्।।६।।

मद्गुणैः केऽपि ताम्यन्ति, निजात्।
निर्गुणसन्तापाद्यशोहरात् ।।७।।

कं वच्मि वेदनामिमामहो।
श्रान्तोऽहमस्मि विधिविपर्ययात्।।८।।

रात्रिः ९.३० वादने
इलाहाबाद रे० स्टेशन, ७.०१.२०१५ ई०

दीपक हूँ, मैं! अपने विकस्वर (उज्ज्वल) प्रकाश के कारण गहन अन्धकारों को प्रिय नहीं हूँ।।१।।

मैं गीती (गीतप्रवण, सुकण्ठ) हूँ। इसीलिये अपने **श्रुतिम्भर राग के कारण कण्ठहीनों को अच्छा नहीं लगता।।२।।**

मैं प्राज्ञ (विद्वान्) हूँ। ऋत् (सत्य) का पोषण करने वाले अपनों विचारों के कारण विमूढ़ों (बुद्धिहीनों) को रास नहीं आता।।३।।

बादल हूँ मैं! वर्षा से उनके पत्र-समूहों का संहार कर डालने केकारण मैं **मन्दारों** का शत्रु बन गया हूँ।।४।।

मैं सूर्य हूँ। संकुचन-रूपी दुर्व्यसन (विपत्ति) पैदा करने के कारण उस कुमुदवनिका का शत्रु हूँ मैं।।५।।

बड़ों का भी बड़ा तथा अधिक बड़ों का भी बड़ा होने के कारण मैं निश्चय ही महत्तम (सबसे बड़ा) तथा शीर्षस्थ हूँ।।६।।

अपनी कीर्ति हरने वाले, निर्गुणताजन्य सन्ताप के कारण कुछ लोग हैं ऐसे, जो मेरे गुणों से सन्तप्त रहते हैं।।७।।

ओह्! अपनी यह वेदना किसे सुनाऊँ! इस **भाग्य-विपर्यय** से मैं श्रान्त हो उठा हूँ।।८।।

•

औदुम्बरी

गतं जीवनं कुशे कण्टके।
औदुम्बरी न वनिका दृष्टा।।१।।

मत्तोऽप्यहो सुकृतिनः कपयः।
ये तत्रैव नित्यसन्दृष्टाः।।२।।

चरन् विन्दते मधूदुम्बरम्।
इति श्रुतं, क्व नु सा परिनिष्ठा।।३।।

आजीवनं कृतं सञ्चरणम्।
नोऽवाप्ता ऽसौ परं प्रतिष्ठा।।४।।

दृष्टाः खला उदुम्बरवन्तः।
निरुदुम्बराः हन्त! साधिष्ठाः।।५।।

औदुम्बरी स्वप्नसंसिद्धिः।
भाति रतिः सा मेऽद्य महिष्ठा।।६।।

किमुदुम्बरं, को नु जानीते?।
जीवनोपनिषदियं गरिष्ठा।।७।।

यदभिलषितमिह यस्य जीवने।
तदुदुम्बरं, व्यथा न्ववशिष्टाः।।८।।

औदुम्बरी गलज्जलिकेयम्।
भवतु समेषां कृते म्रदिष्ठा।।९।।

पूर्वाह्ण ११.२३ वादने
शिमलाऽवासः, २४.०१.२०१५ ई०

•

जीवन सिरा गया कुशों, काँटो में (परन्तु) **गूलर की बगीची** नहीं दीखी।।१।।

ओह! मुझसे तो कहीं अधिक भाग्यशाली हैं बन्दर, जो रात-दिन वहीं (गूलरों के वन में ही) दिखाई पड़ते हैं।।२।।

(उपनिषदों में) ऐसा सुना है कि सञ्चरणशील अर्थात् पुरुषार्थी व्यक्ति ही मधु तथा गूलर (का मीठा फल) प्राप्त कर पाता है। परन्तु वह सचाई (इस युग में) है कहाँ?।।३।।

मैं तो सारी ज़िन्दगी सञ्चरण (अन्वेषण) ही करता रहा, परन्तु वह प्रतिष्ठा (साफल्य-श्री) नहीं प्राप्त सका।।४।।

(इस कलिकाल में तो) दुर्जन लोग की उदुम्बरवान् (ऐश्वर्य-वैभवयुक्त) दीख रहे हैं (परन्तु) जो सत्पुरुष हैं वे तो **निरुदुम्बर** अर्थात् दरिद्र ही हैं।।५।।

मुझे तो आज वह महिमामयी औदुम्बरी-प्रीति (वैभव-समृद्धि) बस स्वप्न की ही संसिद्धि प्रतीत हो रही है।।६।।

(और फिर) वह **उदुम्बर-तत्त्व** है क्या? कौन जानता है इसे? यह तो बस जीवन की रहस्यमय उपनिषत् ही है।।७।।

जिसके जीवन में जो वस्तु **अभिलषित** (काम्य) है वही उदुम्बर (मधुतत्त्व) है। बाकी बची चीजें तो व्यथामात्र हैं।।८।।

(मेरी) यह गूलर की मिठास से भरी ग़ज़ल समस्त पाठकों के लिए मधुरतम सिद्ध हो।।९।।

•

अभिराज-साहित्य (प्रकाशित)

।। संस्कृत ।।

(क) अर्वाचीन-संस्कृत-काव्यम्

महाकाव्यम्

१.	जानकीजीवनम् (२१ सर्गाः) (वाचस्पति-सम्मान)	१९८८ ई०
२.	वामनावतरणम् (१७ सर्गाः) (कालिदास-सम्मान)	१९९४ ई०

खण्डकाव्यम्

१.	आर्यान्योक्तिशतकम् (अन्योक्तिकाव्यम्)	१९७५ ई०
२.	नवाष्टकमालिका (स्तोत्रकाव्यम्)	१९७६ ई०
३.	पराम्बाशतकम् (स्तोत्रकाव्यम्)	१९८१ ई०
४.	शताब्दीकाव्यम् (ऐतिह्यकाव्यम्)	१९८७ ई०
५.	अभिराजसप्तशती (कोशकाव्यम्)	१९८७ ई०
६.	धर्मानन्दचरितम् (तीर्थकाव्यम्)	१९९२ ई०
७.	पञ्चकुल्या (कोशकाव्यम्)	१९९३ ई०
८.	करशूलनाथमाहात्म्यम् (भक्तिकाव्यम्)	१९९६ ई०
९.	कस्मै देवाय हविषा विधेम (कोशकाव्यम्)	१९९६ ई०
१०.	अरण्यानी (काव्यसंग्रहः)	१९९९ ई०
११.	संस्कृतशतकम्	१९९९ ई०
१२.	अभिराजसहस्रकम् (१० शतकानि)	२००० ई०
१३.	मृगाङ्कदूतम् (दूतकाव्यम्)	२००४ ई०
१४.	चर्चरी (काव्यसंग्रहः)	२००४ ई०
१५.	मृगमृगेन्द्रान्योक्तिशतकम्	२००८ ई०
१६.	महर्षिचरितामृतम्	२०१४ ई०
१७.	औदीच्ययक्षगानम्	२०१४ ई०
१८.	वैतरणी (काव्यसंग्रहः)	(प्रेस में)
१९.	अभिराजदण्डकम् (दण्डककाव्यम्)	(प्रेस में)

नवगीतसंग्रहः

१.	वाग्वधूटी (५५ गीतानि)	१९७८ ई०
२.	मृद्वीका (५३ गीतानि)	१९८५ ई०
३.	श्रुतिम्भरा (३८ गीतानि)	१९८९ ई०
४.	मधुपर्णी (६८ गीतानि)	२००० ई०
५.	कौमारम् (५१ शिशुगीतानि)	२००० ई०
६.	अभिराजगीता (९७ गीतानि)	२०११ ई०

गलज्जलिकासंग्रहः

१.	मत्तवारणी (६४ गलज्जलिकाः)	२००१ ई०
२.	शालभञ्जिका (६८ गलज्जलिकाः)	२००६ ई०
३.	कनीनिका (५३ गलज्जलिकाः)	२००९ ई०
४.	हविर्धानी (५४ गलज्जलिकाः)	२००९ ई०
५.	शिखरिणी (६१ गलज्जलिकाः)	२०१३ ई०
६.	औदुम्बरी (६७ गलज्जलिकाः)	२०१५ ई०

(ख) अर्वाचीन-संस्कृत रूपकम् (५ नाटक, ८० एकांकी)

एकाङ्किसंग्रहः

१.	नाट्यपञ्चगव्यम् (५ नाट्यानि)	१९७१ ई०
२.	अकिञ्चनकाञ्चनम् (१ नाट्यम्)	१९७४ ई०
३.	नाट्यपञ्चामृतम् (५ नाट्यानि)	१९७७ ई०
४.	चतुष्पथीयम् (४ नाट्यानि)	१९८३ ई०
५.	रूपरुद्रीयम् (११ नाट्यानि)	१९८६ ई०
६.	नाट्यसप्तपदम् (७ नाट्यानि)	१९९६ ई०
७.	नाट्यनवग्रहम् (९ नाट्यानि)	२००६ ई०
८.	नाट्यनवरत्नम् (९ नाट्यानि)	२००६ ई०
९.	रूपविंशतिका (२० नाट्यानि)	----
१०.	नाट्यनवार्णवम् (९ नाट्यानि)	२०१० ई०
११.	नाट्यनवाह्निकम् (९ नाट्यकानि)	----

सम्पूर्ण-नाटिका : नाटक

१.	प्रमद्वरा (चतुरंकिका)	१९८४ ई०
२.	विद्योत्तमा (चतुरंकिका, कल्पवल्ली सम्मान)	१९९२ ई०
३.	प्रशान्तराघवम् (सप्ताङ्कनाटकम्)	२००६ ई०
४.	लीलाभोजराजम् (सप्ताङ्कनाटकम्)	२०११ ई०
५.	उपभोदयम् (पञ्चाङ्कनाटकम्)	----

(ग) अर्वाचीन-संस्कृत-कथासाहित्यम्

कथासंग्रह :

१.	इक्षुगन्धा (८ कथाः, सा० आकादमी पुरस्कार १९८८)	१९८६ ई०
२.	राङ्गडा (९ कथाः)	१९९२ ई०
३.	चित्रपर्णी (६० लघुकथाः)	१९९९ ई०
४.	पुनर्नवा (११ कथाः)	२००८ ई०
५.	अभिनवपञ्चतन्त्रम्	२००९ ई०
६.	कान्तारकथा (Jungle Story Book)	२००९ ई०

७.	छिन्नमस्ता (९ कथाः)	२०१० ई०
८.	चोलाञ्चलदर्शनम्	२०१५ ई०

(घ) समीक्षा-साहित्य एवं पाठ्यग्रन्थ

अभिनवकाव्यशास्त्रम्

१.	अभिराजयशोभूषणम् (५ उन्मेषाः)	२००६ ई०
२.	अभिनवरससमीमांसा	----

शोधग्रन्थ :

१.	संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति (डी० फिल् शोध-प्रबन्ध, हिन्दी सा० सम्मेलन, प्रयाग)	१९८५ ई०
२.	मणिकाञ्चन (१८ हिन्दी शोध-निबन्ध)	१९८५ ई०
३.	शास्त्रालोचनम् (१८ संस्कृत शोध-निबन्ध)	१९९५ ई०
४.	समीक्षासौरभम् (२५ संस्कृत शोध-निबन्ध)	२००३ ई०
५.	सप्तधारा (सात शीर्षकों में विभक्त ५० हिन्दी शोध-निबन्ध)	२००४ ई०
६.	स्वाध्यायपर्व (३० हिन्दी शोध-प्रबन्ध)	२०१० ई०
७.	प्रज्ञालोक (१८ हिन्दी शोध-प्रबन्ध)	२०११ ई०
८.	Poetry and Poetics (अंग्रजी शोध-निबन्ध)	प्रेस में
९.	शोधप्रविधि एवं पाण्डुलिपिविज्ञान	२००८ ई०
१०.	संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक-काव्यशास्त्र (वि०वि० प्र०, वाराणसी)	२०१० ई०
११.	विंशशताब्दीसंस्कृतग्रन्थसूचीपत्रम् (Catalogue of 20th Century Sans. Works)	२००२ ई०
१२.	सन्धानसिन्धु (शोध-लेख)	२०१४ ई०
१३.	नई सहस्राब्दी में संस्कृत (समीक्षा)	२०१५ ई०
१४.	ज्ञानाञ्जनशलाका (संस्कृतालेख)	----

पाठ्यग्रन्थाः

१.	किरातार्जुनीयम् (प्रथमसर्गः, प्रथम संस्करण)	१९७० ई०
२.	कादम्बरीकथामुखम् (B.A. Class)	१९७३ ई०
३.	छन्दोऽलङ्कारसौरभम् (B.A. Class)	१९८० ई०
४.	रसनिरूपणम् (B.A. Class)	१९८६ ई०
५.	संस्कृतगद्यामृतम् (B.A. Class)	१९९६ ई०
६.	साहित्यदर्पण : (३ परिच्छेद) (B.A. Class)	१९९९ ई०

७. संस्कृतकाव्यत्रिपथगा (Intermediate Class) २००० ई०

८. संस्कृतामृतचन्द्रिका (Intermediate Class) २००० ई०

(ङ) कुछ विशिष्ट कृतियाँ

१. SEJARAH KESUSASTRAAN SANSKERTA
(History of Sanskrit in Bahasa Indonesia, First Ed.
Denpasar, Bali, (Indonesia) १९८८ ई०

२. Number of Rasas (रसों की संख्या)
(डॉ० राघवन प्रणीत ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण ·
वि०वि० प्रकाशन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित २००७ ई०

३. रामायणककविन् (यवद्वीपीय रामायण)
(देवनागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद एवं विस्तृत भूमिका।
सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि०वि०, वाराणसी द्वारा प्रकाशित) १९९५ ई०

४. सुवर्णद्वीपीय रामकथा
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित १९९६ ई०

५. बालीद्वीपे भारतीया संस्कृतिः
ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित १९९९ ई०

६. कस्मै देवाय हविषा विधेम (प्रकाशितम्) १९९७ ई०
देवस्तुति, महात्मस्तुति, विद्वत्स्तुति, राजस्तुति, सत्पुरुषस्तुति
एवं प्रकीर्णस्तुति शीर्षकों में विभक्त प्रायः १०० अष्टक

७. भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीकः बाली द्वीप
राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित १९९९ ई०

८. ओङ्कारविज्ञानम् (साईदास बाबा-प्रणीतम्)
हिन्दी रूपान्तर एवं भूमिका (यंत्रस्थ)

९. स्वर्णजयन्ती संस्कृतकाव्यम्
(पञ्चाशन्मितानां मूर्द्धन्यकवीनां काव्यानि)
सम्पादन, सङ्कलन एवं भूमिका, गुजरात राज्य संस्कृत
अकादमी द्वारा प्रकाश्य (यंत्रस्थ)

१०. विंशशताब्दीसंस्कृतकाव्यामृतम् २००० ई०
(शताधिकसंस्कृतकाव्यकाराणां कवित्ववैभवम्)
सम्पादन, सङ्कलन एवं भूमिका
दिल्ली संस्कृत आकादमी द्वारा प्रकाशित

११. महालक्ष्मीमुक्तिसंवादः २०१० ई०
डॉ० प्रदीप बाघ-प्रणीत काव्य का संस्कृतपाद्यान्तर २०१० ई०

१२. विजयपर्व (साहित्यअकादमी-पुरस्कृत)

पद्मभूषण डॉ० रामकुमारवर्मा-प्रणीत
हिन्दी नाटक का संस्कृत रूपान्तर — २०१० ई०

१३. कल्पवल्ली (संस्कृत काव्यसंकलना)
साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित — २०१३ ई०

(च) अभिराजवाङ्मय-समीक्षाग्रन्थाः

१. अभिराज राजेन्द्र मिश्र : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व
सम्पादक डॉ० राजेशकुमारी मिश्रा — २००५ ई०

२. साहित्यकल्पतरुः अभिराजराजेन्द्र — २०१० ई०
लेखिका-डॉ० राजेशकुमारी मिश्रा

३. Abhiraja Dr. Rajendra Mishra and
His Works (Three Volumes) — २००९ ई०
By : Dr. S. Ranganath, Bangalore

४. जानकीजीवनम् : अभिनवस्पर्श — २००८ ई०
डॉ० सुमन जैन, श्रीगंगानगर, राजस्थान

५. आधुनिक संस्कृत गद्यकार-पुष्प १ — २००८ ई०
डॉ० अभिराज राजेन्द्र मिश्र (गुजराती)
डॉ० मुकेश आर० पण्ड्या, पीलवाई, महेसाना, गुजरात

६. अभिराजराजेन्द्रमिश्रविरचितशतकद्वयम् — २००९ ई०
गुजराती अनुवाद-डॉ० राधा एम्० पटेल, पालनपुर, गुजरात

७. इक्षुगन्धा (साहित्य अकादमी-पुरस्कृत) — २००८ ई०
बँगला रूपान्तर-श्रीमती अमिता चक्रवर्ती
साहित्य अकादमी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित — २००९ ई०

८. अभिराजरागकाव्य-विमर्श — २०१२ ई०
डॉ० हितेश चौरे, जबलपुर

।। हिन्दी-अँग्रेजी ।।

काव्यसंग्रह

१. दो पात नींबू-तीन पात अमोला (६८ कविताएँ) — १९६८ ई०
२. मुक्तधारा (२० गीत) — १९७२ ई०
३. सपनों में डूब गया मन (५५ गीत) — १९७२ ई०
४. पलकों के बन्द द्वार (५३ गीत) — १९९० ई०
५. तटस्था (जनवादी कविताएँ) — २००३ ई०
६. गन्धमादन (राष्ट्रीय गीत-संग्रह) — २०१४ ई०
७. आँचलतले तुम्हारे (गीत-संग्रह) — २०१४ ई०

खण्डकाव्य

१. वेदना (भूमिकाः पं० सुमित्रानन्दन पन्त) १९६६ ई०
२. पनघट (भूमिकाः डॉ० रामकुमार वर्मा) १९६७ ई०
३. मुक्तिदूत (हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में निर्धारित) १९९५ ई०
४. पूर्णकाम (भरत पर अश्रित) १९७५ ई०
५. गृहत्याग (तथागत पर अश्रित) १९७५ ई०

बालसाहित्य

१. बच्चों के पाहुन (पञ्चतन्त्र की पद्यकथाएँ) १९७५ ई०
२. पढ़ो और बनो (सचित्र बालकथाएँ) १९७६ ई०
३. वन के गीत-मन के मीत (पद्यकथाएँ) १९७६ ई०
४. नया विहान (तीन एकाङ्की) १९७६ ई०
५. महाभारत की किशोरकथाएँ १९८१ ई०
६. तितली के पंख (३० शिशुकविताएँ) १९८२ ई०
७. रक्ताभिषेक (तीन एकाङ्की) १९८५ ई०

भोजपुरी काव्यसंग्रह

१. फगुनी बयार (१२० गीत) १९९२ ई०

गद्यवाङ्मय

१. विधवा (आञ्चलिक उपन्यास) १९७३ ई०
२. देवरा हजारी (कथासंग्रह) १९९४ ई०
३. रक्तवैतरिणी (कथासंग्रह) २००५ ई०

सम्पादित ग्रन्थ

१. प्रतानिनी (काव्यसंग्रहः) १९९६ ई०
।। आचार्य बच्चूलाल अवस्थी-प्रणीत ।।
२. ब्रह्मविद्यारसायनम् २०१५ ई०
।। आचार्य आद्याप्रसाद मिश्र-अभिनन्दनग्रन्थ ।।
३. संस्कृत-वाङ्मय में हिमाचल २००९ ई०
४. संस्कृतवाङ्मय में गंगा २०११ ई०
।। पुण्यश्लोक डॉ० देवेन्द्रमिश्र-शोध-प्रबन्ध ।।
५. गीतगोमुखम् ।। संस्कृतगीतसङ्कलनम् ।।
६. हिन्दी कवितासङ्कलनम् ।। संस्कृतरूपान्तरणम् ।।

अप्रकाशितवाङ्मयम्

संस्कृत

१. पृथुवंशम् (महाकाव्यम्)

२. बालीविलासम् (खण्डकाव्यम्)
३. गीतभारतम् (रागकाव्यम्)
४. अभिराजचम्पूः (चम्पूसंग्रहः)
५. छन्दोऽभिराजीयम् (अभिनवछन्दश्शास्त्रम्)
६. काव्यतरङ्गिणी (संस्कृतसाहित्येतिहासः)
७. साहित्यपाथोनिधिमन्थनम् (काव्य-संग्रहः)
८. मरुवणमाकन्दः (उपन्यासः)
९. गृभ्णामि त्वां सौभगत्वाय (आत्मवृत्तम्)
१०. चौरशतकम् (खण्डकाव्यम्)
११. छायातापीयम् (खण्डकाव्यम्)
१२. धोरणी (काव्यसङ्कलनम्)
१३. शतकपञ्चदशी (पञ्चदशशतकसङ्कलना)
१४. रङ्गदर्पणः (नाट्यशास्त्रम्)
१५. शाश्वतस्मृतिः (नव्यस्मृतिग्रंन्थः)

हिन्दी

१६. बदरा भइल मोरा दूत (मेघदूत का भोजपुरी रूपान्तरण)
१७. बिरहा कै रैन (भोजपुरी खण्डकाव्य)
१८. सकुन्तला (भोजपुरी महाकाव्य)
१९. सुपर्ण (खण्डकाव्य)
२०. अस्थिकलश (खण्डकाव्य)
२१. पाषाणी (खण्डकाव्य)
२२. त्रिणाचिकेत (काव्यरूपक)
२३. अदृश्यन्ती (पौराणिक नाटक, तीन अङ्क)
२४. दुर्योधनवध (मञ्चीय नायक पाँच अङ्क)
२५. रोदसी (महाकाव्य, १५ सर्ग)
२६. टिटनेसवार्ड की पाँच रातें (डायरी)
२७. हिमालय के आँगन में (यात्रावृत्त)
२८. मेरी प्रथम दक्षिणभारत-यात्रा (यात्रावृत्त)
२९. महाकाल की नगरी में (यात्रावृत्त)
३०. पुण्यश्लोको नलो राजा (संस्मरण)
३१. आत्मख्यात कालिदास (समीक्षाग्रन्थ)
३२. जनवादी संस्कृत कविता (समीक्षाग्रन्थ)

मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः

उत्तर-प्रदेश के पूर्वांचल जनपद जौनपुर में द्रोणीपुर नामक गाँव में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र एवं महीयसी अभिराजीदेवी के मध्यम-पुत्र के रूप में २ जनवरी, १९४३ ई० को उत्पन्न प्रो० 'अभिराज' राजेन्द्रमिश्र इलाहाबाद एवं शिमला विश्वविद्यालय में आचार्य रहने के अनन्तर सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी के लोकप्रिय कुलपति रह चुके हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के विद्यालय एवं पार्श्वस्थ कालेज में पूर्ण करने के बाद श्री मिश्र जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी०ए०, एम०ए० तथा डी०फिल्० उपाधियाँ प्राप्त की। १९६४ ई० की एम०ए० (संस्कृत) परीक्षा में वे सर्वोच्च अंक तथा प्रथम स्थान पाने के साथ ही साथ समूची आर्ट्स फैकल्टी के टॉपर भी रहे।

शोधकार्य सम्पन्न करने के साथ ही साथ आपने संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में १० दिसम्बर, १९६६ ई० से अध्यापन प्रारम्भ किया तथा जनवरी, १९९१ ई० तक लेक्चरर एवं रीडर के रूप में वहीं कार्यरत रहे। इसी बीच भारत-सरकार ने उन्हें बालीद्वीप (इण्डोनेशिया) के उदयन विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त कर दिया, जहाँ उन्होंने मार्च, १९८७ से अप्रैल, १९८९ तक रहकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का उत्कृष्ट साहित्यिक कार्य किया। भारत लौटते ही प्रो० मिश्र जनवरी, १९९१ में हिमाचलप्रदेश युनिवर्सिटी, शिमला में आचार्य एवं अध्यक्ष नियुक्त हो गये। अभी सेवावधि बीती भी नहीं थी कि महामहिम कुलाधिपति, उ०प्र० ने उन्हें सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का कुलपति नियुक्त कर दिया २४ अप्रैल, २००२ ई० को जहाँ वह २००५ ई० तक रहे।

हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा के प्रातिभ सर्जक तथा अंग्रेजी एवं प्राचीन जावीभाषा में भी आधिकारिक प्रवेश रखने वाले सहृदय कवि एवं प्रखर चिन्तक प्रो० राजेन्द्र मिश्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके विद्वान हैं। उनका ज्ञान जितना गम्भीर एवं बहुआयामी है, अभिव्यक्ति उतनी ही मौलिक एवं बोधगम्य। उनकी वाणी का सम्मोहन लोगों को बरबस महीयसी महादेवी वर्मा एवं आचार्य विद्यानिवास मिश्र का स्मरण कराता है।

शताधिक यशस्वी कृतियों एवं प्रायः तीन सौ शोध-निबन्धों के सर्जक प्रो० मिश्र को साहित्य अकादमी (१९८८), के०के० बिरला फाउण्डेशन का वाचस्पति सम्मान (१९९३), कालिदास सम्मान (१९८८, १९९६), कल्पवल्ली सम्मान (१९९८) तथा महामहिम राष्ट्रपति-सम्मान १९९९ के अतिरिक्त दिल्ली, मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश की अकादमियों के भी पच्चीस से अधिक साहित्यिक पुरस्कार अब तक प्राप्त हो चुके हैं।

Design & Printed by : Academy Press, Alld # 2500970

मिश्रोऽभिराजराजेन्द्रः

उत्तर-प्रदेश के पूर्वांचल जनपद जौनपुर में द्रोणीपुर नामक गाँव में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र एवं महीयसी अभिराजीदेवी के मध्यम-पुत्र के रूप में २ जनवरी, १९४३ ई० को उत्पन्न प्रो० 'अभिराज' राजेन्द्रमिश्र इलाहाबाद एवं शिमला विश्वविद्यालय में आचार्य रहने के अनन्तर सम्पूर्णानन्द संस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी के लोकप्रिय कुलपति रह चुके हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के विद्यालय एवं पार्श्वस्थ कालेज में पूर्ण करने के बाद श्री मिश्र जी ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी०ए०, एम०ए० तथा डी०फिल्० उपाधियाँ प्राप्त की। १९६४ ई० की एम०ए० (संस्कृत) परीक्षा में वे सर्वोच्च अंक तथा प्रथम स्थान पाने के साथ ही साथ समूची आर्ट्स फैकल्टी के टॉपर भी रहे।

शोधकार्य सम्पन्न करने के साथ ही साथ आपने संस्कृत-विभाग, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में १० दिसम्बर, १९६६ ई० से अध्यापन प्रारम्भ किया तथा जनवरी, १९९१ ई० तक लेक्चरर एवं रीडर के रूप में वहीं कार्यरत रहे। इसी बीच भारत-सरकार ने उन्हें बालीद्वीप (इण्डोनेशिया) के उदयन विश्वविद्यालय में विजिटिंग प्रोफेसर नियुक्त कर दिया, जहाँ उन्होंने मार्च, १९८७ से अप्रैल, १९८९ तक रहकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का उत्कृष्ट साहित्यिक कार्य किया। भारत लौटते ही प्रो० मिश्र जनवरी, १९९१ में हिमाचलप्रदेश युनिवर्सिटी, शिमला में आचार्य एवं अध्यक्ष नियुक्त हो गये। अभी सेवावधि बीती भी नहीं थी कि महामहिम कुलाधिपति, उ०प्र० ने उन्हें सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी का कुलपति नियुक्त कर दिया २४ अप्रैल, २००२ ई० को जहाँ वह २००५ ई० तक रहे।

हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी में काव्य, नाट्य, कथा एवं समीक्षा के प्रातिभ सर्जक तथा अंग्रेजी एवं प्राचीन जावीभाषा में भी आधिकारिक प्रवेश रखने वाले सहृदय कवि एवं प्रखर चिन्तक प्रो० राजेन्द्र मिश्र अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिके विद्वान हैं। उनका ज्ञान जितना गम्भीर एवं बहुआयामी है, अभिव्यक्ति उतनी ही मौलिक एवं बोधगम्य। उनकी वाणी का सम्मोहन लोगों को बरबस महीयसी महादेवी वर्मा एवं आचार्य विद्यानिवास मिश्र का स्मरण कराता है।

शताधिक यशस्वी कृतियों एवं प्रायः तीन सौ शोध-निबन्धों के सर्जक प्रो० मिश्र को साहित्य अकादमी (१९८८), के०के० बिरला फाउण्डेशन का वाचस्पति सम्मान (१९९३), कालिदास सम्मान (१९८८, १९९६), कल्पवल्ली सम्मान (१९९८) तथा महामहिम राष्ट्रपति-सम्मान १९९९ के अतिरिक्त दिल्ली, मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश तथा उत्तर-प्रदेश की अकादमियों के भी पच्चीस से अधिक साहित्यिक पुरस्कार अब तक प्राप्त हो चुके हैं।

Design & Printed by : Academy Press, Alld # 2500970